अनन्य

'हिंदी की नयी उड़ान'

मासिक पत्रिका

सितम्बर-अक्टूबर 2023

(संयुक्तांक)

अनन्य

'हिंदी की नयी उड़ान'

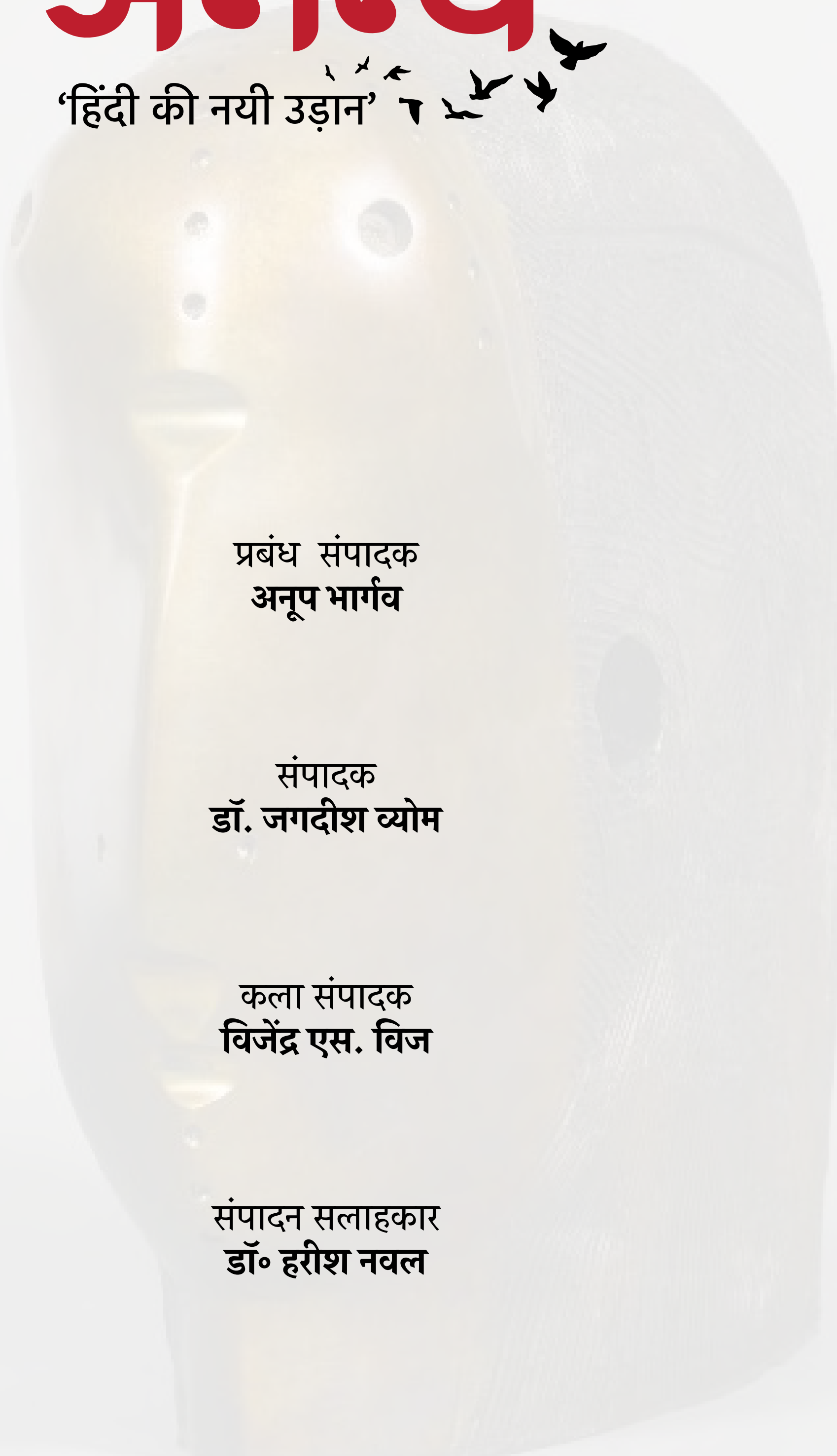

प्रबंध संपादक

अनूप भार्गव

संपादक

डॉ. जगदीश व्योम

कला संपादक

विजेंद्र एस. विज

संपादन सलाहकार

डॉ॰ हरीश नवल

भारतीय कौंसलावास, न्यूयॉर्क की हिंदी पत्रिका

अनन्य
मासिक पत्रिका
सितम्बर-अक्टूबर 2023 (संयुक्तांक)
भारतीय कौंसलावास, न्यूयॉर्क की हिंदी पत्रिका

प्रबंध संपादक
अनूप भार्गव

संपादक
डॉ॰ जगदीश व्योम

कला संपादक
विजेन्द्र एस. विज

संपादन सलाहकार
डॉ॰ हरीश नवल

तकनीकी सलाहकार
बालेन्दु शर्मा दाधीच

संपादन सहयोग
आभा खरे / स्वरांगी साने

व्यवस्था
अमित खरे / गीता घिलोरिया

सर्वाधिकार सुरक्षित
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के अन्यत्र उपयोग हेतु लेखक / प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित सामग्री हेतु सम्बंधित लेखक पूरी तरह से उत्तरदायी होंगे।

संपर्क
रचनाकार अपनी रचनाएँ अनन्य में प्रकाशनार्थ यहाँ भेजे : sampadak.ananya@gmail.com

पाठक अपनी प्रतिक्रियाएँ और सुझाव यहाँ भेजें
pratikriya.ananya@gmail.com

COVER PAGE
Artist: Himmat Sah
‘Hammer on the square’
2015

आइकॉन पर क्लिक करने से
आप ऑडिओ रिकॉर्डिंग सुन सकते हैं

आइकॉन पर क्लिक करने से
आप विडियो रिकॉर्डिंग सुन सकते हैं

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

संपादकीय : डॉ. जगदीश व्योम **06**

गीत/नवगीत : चार नवगीत **-शुभम् श्रीवास्तव ओम** **08**

कविताएँ : दो कविताएँ **-बेजी जैसन** **11**

कविताएँ : दो कविताएँ **-अशोक व्यास** **13**

कहानी : 'हँसो, जल्दी हँसो' **-कल्पना मनोरमा** **15**

व्यंग्य : -सूर्यकुमार पांडेय **23/25**
1. 'शर्म से आमना-सामना' 2. प्रतिष्ठा का प्रश्न

कहानी : 'वजूद' **-प्रगति टिपणीस** **27**

ग़ज़ल : पाँच ग़ज़लें **-पवनेन्द्र 'पवन'** **34**

यात्रा संस्मरण : 'निकल्लिये घूमने अमरीका' **-अनूप कुमार शुक्ल** **36**

लेख : 'मैं और मेरी शायरी' **-रघुपति सहाय 'फ़िराक़'**
(फ़िराक़ गोरखपुरी) **44**

साहित्यिक विरासत से : 'हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान ?'
-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र **52**

कला : 'हिम्मत शाह का शिल्प संसार' **-वेद प्रकाश भारद्वाज** **57**

इस अंक के चित्रकार :
हिम्मत शाह - कवर पृष्ठ : हैमर ऑन द स्क्वायर,
एवं अंदर के चित्र **63**

अनुमेहा जैन - पृष्ठ भाग : *Mystery of Follicles-16* **पृष्ठ भाग**

दो शब्द...

अनन्य के सितम्बर-अक्टूबर अंक में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी को फिर से याद करना आवश्यक-सा लग रहा है। उन्होंने हिंदी भाषा के लिए भारतीयों को अपनी निज भाषा में शिक्षित करने के सपने ही नहीं देखे, बल्कि वे आजीवन बहुत सार्थक प्रयास इस दिशा में निरंतर करते रहे। सन् 1877 ई. में 'हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान' शीर्षक से उन्होंने 98 दोहों के रूप में एक सभा को सम्बोधित किया था। उनके वे 98 दोहे हिंदी की एक अमूल्य निधि ही नहीं बल्कि एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। इन दोहों को 'अनन्य' के इस अंक में दिया जा रहा है। इन दोहों में छोटी-छोटी बातें हैं जो एक प्रकार से हिंदी के विकास के लिए महत्वपूर्ण सूत्र हैं।

हिंदी भाषा और साहित्य के विकास के प्रति जो वास्तव में गम्भीर हैं, वे इस तथ्य से भली-भाँति परिचित हैं कि हिंदी के विकास के लिए जितनी आवश्यक कविता, कहानी लिखना और उनका प्रकाशित होना है; उतना ही आवश्यक है, हिंदी भाषा के व्याकरण को जानना, वर्तनी की अशुद्धियों को समझना, हिंदी वर्णमाला को याद रखना और उसका ठीक से उच्चारण करने का अभ्यास करना।

वास्तविकता तो ये है कि हिंदी की वर्णमाला को पढ़ने, समझने, उसका सही उच्चारण करने का अभ्यास करने वालों का प्रतिशत बहुत ही कम है, जबकि इसके अशुद्ध उच्चारण करने वालों की बहुत बड़ी संख्या है। यहाँ तक कि प्राथमिक और उच्च कक्षाओं में हिंदी पढ़ाने वाले शिक्षकों की एक बड़ी संख्या है, जो हिंदी वर्णमाला का उच्चारण ठीक से नहीं कर पाते हैं, परिणाम स्वरूप प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में छात्र-छात्राएँ इनसे अशुद्ध उच्चारण सीख लेने के लिए अभिशप्त हैं। यह बात देखने-सुनने में छोटी लग सकती है, परन्तु यह हिंदी की मूल समस्या भी है, यह भी हमें समझना होगा। हिंदी-वर्णमाला के व्यंजन- 'क' वर्ग, 'च' वर्ग, 'ट' वर्ग, के पंचमाक्षरों का उच्चारण करवा कर देख लीजिए ... वास्तविक स्थिति का पता चल जाएगा। विडम्बना यह है कि हिंदी की इस मूल समस्या की अनदेखी हर स्तर पर देखी जा सकती है। देवनागरी लिपि से सम्बंधित तमाम संस्थाएँ, हिंदी शिक्षकों को प्रशिक्षित करने वाली तमाम सरकारी और गैर सरकारी संस्थान व संस्थाएँ इस पर थोड़ा भी ध्यान दे दें तो यह समस्या आसानी से दूर हो सकती है।

'अनन्य' के पाठकों से भी यह अनुरोध है कि वे अपने आसपास कम से कम दस छात्रों व शिक्षकों से हिंदी वर्णमाला सुनें और उन्हें सही जानकारी भी दें। इससे पहले स्वयं भी समझ लें कि सही उच्चारण क्या है... यदि हम इतना कर सकें तो हिंदी के लिए यह आपका बड़ा योगदान हो सकेगा। यदि समय

निकाल कर इस महत्वपूर्ण कार्य में कुछ सहयोग कर सकें तो अपनी प्रतिक्रिया लिखकर अवश्य भेजें।

अनन्य का उद्देश्य हिंदी भाषा-साहित्य को पाठकों तक पहुँचाने के साथ-साथ हिंदी से जुड़ी समस्याओं को यथासंभव दूर करने का प्रयास भी है। इस दिशा में देश-विदेश में रह रहे हिंदी प्रेमी चाहें तो अपने-अपने स्तर पर बड़ा सहयोग कर सकते हैं।

अनन्य के इस अंक की सामग्री आपको कैसी लगी... आपके पत्रों की प्रतीक्षा रहेगी।
अभी बस इतना ही

-डा० जगदीश व्योम
संपादक, अनन्य

शुभम् श्रीवास्तव ओम

मीरजापुर,उत्तर प्रदेश में जन्में शुभम् श्रीवास्तव सुप्रसिद्ध नवगीतकार हैं। 'फिर उठेगा शोर एक दिन', 'गीत लड़ेंगे अँधियारों से', 'शोक गीतों के समय में' शीर्षक से शुभम् के 3 नवगीत संग्रह प्रकाशित हैं। 'हम असहमत हैं समय से'- लॉकडाउन अवधि के नवगीतों के संकलन सहित वरिष्ठ नवगीतकार गुलाब सिंह, सुधांशु उपाध्याय, गणेश गम्भीर, यश मालवीय एवं मयंक श्रीवास्तव के प्रतिनिधि नवगीत संकलनों का सम्पादन किया है।

ईमेल - shubham.omji@gmail.com

गीत/नवगीत

-शुभम् श्रीवास्तव ओम

1.
ध्वंस सृजन का कठिन संतुलन

शान्ति महज प्रहसन है
जब मन हो तब खेला जा सकता है
सच तो यह है
मन का स्थायी भाव हमेशा युद्ध रहा है

हम धरती थर्राकर खुश हैं
हम खुश हैं आकाश कँपाकर
हम खुश होते चीखें सुनकर
खुश होते हैं आग लगाकर
नहीं शिथिल हो तनिक नियंत्रण
हमें चाहिए वीटो पॉवर
हमने कब केवल धमकी दी
कब विरोध का ताप सहा है।

हमने अपने इस प्रहसन की
खातिर दूतावास बनाये
हमने किये सैन्य-गठबन्धन
नियमित युद्धाभ्यास बनाये
प्रोटोकॉलें दरकिनार सब
हमने रोके कहाँ परीक्षण
खुद पर लगते प्रतिबन्धों को
एक परत तक और तहा है।

हम अपने ही हथियारों से
लेंगे अपने प्राण किसी दिन
हमीं ध्वस्त कर डालेंगे
अपने सारे निर्माण किसी दिन
कब तक हममें बचा रहेगा
ध्वंस-सृजन का कठिन संतुलन
कब बिगाड़ दे ठीक नहीं
यह भीतर पैठा अशगुनहा है।

...

2.
अमर पंछी

हर साँचे से यूँ
बाहर हो जाना है,
हमको हर दिन
ताज़ातर हो जाना है।

दीवारों पर टँगे
गुलाबी चित्र नहीं
किसी कथानायक से
खास चरित्र नहीं
कोई अनहद
जीवन-स्वर हो जाना है।

एक किला सपनों का
गढ़कर हारेंगे
हम हारेंगे भी
तो लड़कर हारेंगे
कठिन प्रश्न का
प्रत्युत्तर हो जाना है।

कुछ अनचाहे अनुभव
गाँठ हुआ कुछ मन
कण-कण में कोई
अदृश्य-सी ऊर्जा बन
सारी चीज़ों से
ऊपर हो जाना है।

जहाँ घाव हो,
आँसू हो, अपनापन हो
वही उमड़ना
जहाँ कहीं भी जीवन हो
एक अमरपंछी का
पर हो जाना है।

3.
बच्चे आये

आसमान में नर्म रुई-से
बादल छाये हैं
अगल-बगल के छोटे बच्चे
छत पर आये हैं।

चहक रहे हैं साथ-साथ
दिन चहक रहा-सा हैं
नन्हीं जेबों में सिक्कों-सा
खनक रहा-सा है
नाउम्मीदी के मौसम में भी
अँखुआये हैं।

बच्चे धूप समझते हैं
हो जाते धूप-घड़ी
कितने कम शब्दों में करते
बातें बड़ी-बड़ी
छुपकर देख रहे किसको
किससे शर्माये हैं।

बहुत बड़े हो जाते हैं ये
बच्चे कहीं-कहीं
चिड़िया डरकर नहीं उड़ रही
बैठी मिली वहीं

बच्चे आये, साथ-साथ
घर आँगन लाये हैं।
...

4.
स्काई लालटेन

बच्चों ने छोड़े हैं
स्काई लालटेन
जाने ये किस छत से
किस छत को जायेंगे।

एक चहक आँखों से
होंठो तक फैली
मुट्ठी भर गर्म हवा
काग़ज़ की थैली

बच्चों ने छोड़े हैं
स्काई लालटेन
अँधियारे नभ में
कुछ देर जगमगायेंगे।

थोड़ा सा धुँआ, शोर
सहसा उजियारा
तारों की ओर बढ़ा
छोटा-सा तारा

बच्चों ने छोड़े हैं
स्काई लालटेन
उछलेंगे-कूदेंगे
साथ गुनगुनायेंगे।
कुछ पल का भूला मन
फिर वही निराशा
कितनी गहरी उदास
किरनों की भाषा

बच्चों ने छोड़े हैं
स्काई लालटेन
किसका संदेशा ये
किससे कह आयेंगे।

-शुभम् श्रीवास्तव ओम

बेजी जैसन

राजस्थान में जन्मीं, केरल मूल की निवासी एवं कुवैत (मिडिल ईस्ट) में रह रहीं बेजी जैसन कविता, कहानी तथा अनुवाद विधा में लेखन कर रहीं हैं। बाल रोग विशेषज्ञ के रूप में कार्यरत बेजी जी की 3 पुस्तकें- 'हंस अकेला', 'सोल ग्राफिटी', पप्पा-व्हेन द कैन्डल मेल्ट्स' शीर्षक से प्रकाशित हैं।

ईमेल - drbejijaison@gmail.com

कविताएँ

-बेजी जैसन

युद्ध-1

उसकी चीखें
लगातार मेरे कानों में गूँज रही थीं
वह चौराहे पर
छाती पीटती हुई
गोल-गोल घूम रही थी
उसके कपड़े का
एक छोर पकड़
एक थकी बच्ची रोती-बिलखती
उसके आगे-पीछे
'बस माँ, रुक जाओ...'
'मेरे बच्चे मेरी गोदी में थे
जब मारे गये
सुन रहे हो!
वो भूखे मर गये
सुन रहे हो!
उन्होंने खाना नहीं खाया था...'
इतनी मोहलत होती
कि मरने के पहले
पेट भर खा लेते बच्चे...
...

युद्ध-2

समाचार आया
दोनों तरफ़ से कहा गया
कि दुश्मन ने बच्चों के सर
धड़ से अलग कर दिए
और क्योंकि जुर्म संगीन था,
प्रतिशोध ज़रूरी था
दोनों तरफ़ के लोग
माँओं के आँचल से
बच्चे खींच लाये
दोनों ने अपने मरे बच्चे याद किए
'हाँ बिल्कुल ऐसा ही था मेरा बच्चा
भूखा, बिलखता,
यूँ ही मिट्टी और मलबे से सना
रो रहा था
बिलकुल ऐसा
अकेला, अधनंगा,
बहती हुई नाक,
माँ को पुकारता हुआ...'
और बस
हाथ उठा

और सर धड़ से अलग हो गया
यूँ ही
जाने गेंद की तरह लुढ़क गया होगा
जाने चाकू की धार पर सहम गया होगा
क्या भूख से ज़्यादा
हुई होगी तकलीफ़...
जो भी हो
अब हिसाब बराबर था
सब अपने बच्चों जैसे बच्चे को मारकर
अपने बच्चे का बदला ले चुके थे।
-बेजी जैसन

-बेजी जैसन

अशोक व्यास

जोधपुर (राजस्थान) में जन्मे तथा न्यूयार्क (अमेरिका) में रह रहे अशोक व्यास कविता, निबंध, रेडियो-नाटक,और कहानी विधा में लेखन करते हुए लगातार सक्रिय हैं। 24 बरसों से न्यूयार्क के प्रमुख टी.वी चैनेल ITVGOLD पर साहित्य- सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर साक्षात्कार लेने तथा परिचर्चाओं के सूत्रधार रहे अशोक व्यास जी की 3 पुस्तकें प्रकाशित है। 'भारत गौरव' सम्मान से सम्मानित हैं।

ईमेल - insightashok@yahoo.com

कविताएँ

-अशोक व्यास

शब्दों का रंग

रंग शब्दों का
छूटता नहीं
मौन तक
रँगा-रँगा
डूबा हुआ
तुम्हारे सघन स्मरण में!

ना जाने कैसे
सारे रंगों में
देखता हूँ
अपने आप को
मैं रंगहीन होकर
सब रंगों में
ढल जाता हूँ
इस तरह
लड़खड़ा कर भी
सँभल जाता हूँ

रंग-रंग संग-संग
जन्म-जन्म से
वही गीत दोहराता हूँ
जिनकी लय में
अनंत से अभेद हो
जाता हूँ

रंग मुझसे हैं सारे
बात ये सत्य है इतनी ज़्यादा,
चकाचौंध में इसकी
कोई देख न पाएगा मुझे
इसलिए अपनी हक़ीक़त
सबसे छुपाता हूँ

2.

साथ वापिस
इन सब दिखने वाली चीजों में से
नहीं ले जा सकूँगा कुछ भी
और तो और

ये देह भी
नहीं रहेगी साथ

सोचते
करने लगा जांच
क्या लेकर आया था साथ

और
कहाँ से आया था मैं
फिर यह प्रश्न भी कौंधा
आखिर हूँ कौन मैं

सवालों पर
सूरज कि पहली किरण का स्पर्श करवा कर
जब लौटा

नदी मैं डूबकी लगा कर
नंगे पाँवो से
बालू मिटटी ने कहा
'लाना ले जाना कुछ नहीं
तुम हो
आने जाने से परे हमेशा

बात इतनी सी
रख लेने को याद
खेल है
चुनौतियाँ हैं

जीवन भूले हुए को
याद करने का नाम है
और
मूल को याद करने का
प्रयास ही
मुक्त कर सहज ही
उत्सवमय बना देता है
हर साँस को'

-अशोक व्यास
न्यूयार्क, अमेरिका

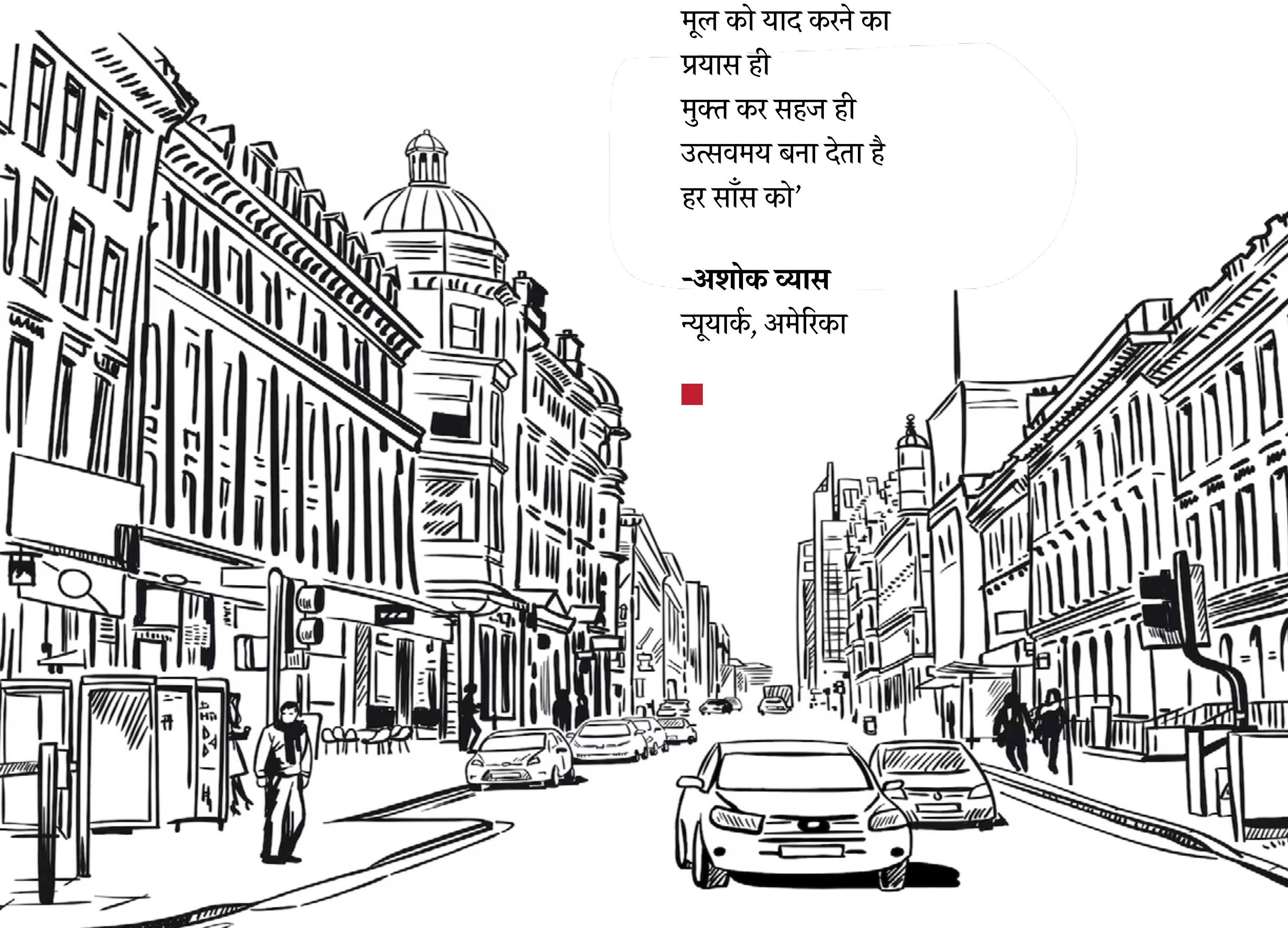

कल्पना मनोरम

जिला इटावा, उत्तर प्रदेश में जन्मी, और वर्तमान में दिल्ली में निवास कर रहीं कल्पना मनोरमा हिन्दी लेखन से जुड़ी हुई हैं। कुछ वर्षों तक अकेडमिक प्रकाशन हाउस में एडिटर के पद पर रहीं एवं लंबे समय तक हिन्दी-संस्कृत विषय के अध्यापन कार्य से जुड़ी कल्पना जी कविता, नवगीत, लघुकथा, कहानी विधा में सृजनरत हैं और अबतक इनके चार संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। ब्लॉग "कस्तूरिया" के कुशल संचालन व सम्पादन से जुड़ी हैं। सूर्यकांत निराला सम्मान सहित कई प्रतिष्ठित साहित्यिक संस्थानों से सम्मानित/पुरस्कृत हैं।

ईमेल - kalpanamanorama@gmail.com

हँसो, जल्दी हँसो

-कल्पना मनोरमा

"हँसी पसंद नानी की बेटी, मेरी माँ! बहुत सोच-समझकर हँसती और इसी बिना पर अकसर कहा करती थीं- "कृपा, तुम नानी की तरह दिन-दिन हँसती हो! ज़रा तमीज़ सीखो। ज्यादा हँसना, अपने दुःख को पहचानने से इन्कार करना होता है। उस पीड़ा को मौन पीना...जो अपने हिस्से की होती ही नहीं ..."

एहसास की स्याही से कहानी लिखें तो ठीक,नहीं तो कथ्य को 'चेज़' करते रहना अब मुझे टाइफाइड के लक्षणों जैसा लगने लगा था। कभी-कभी प्रकाशित आकाक्षाएँ मन को जाग्रत करने में चुक जाती हैं, और धुँधले निष्कर्ष सहायक सिद्ध हो जाते हैं। बहरहाल उस दिन ऑफिस से लौटकर मन था कि जल्दी सो जाऊँ और सुबह देर तक सोती रहूँ। क्योंकि अगले दिन रविवार था। बिस्तर पर पहुँचने के बाद ये ख़याल हवा हो गया।

मानवीय दुःख, पीड़ा और परेशानी रात के नीरव बहाव में बहते जा रहे थे और मैं खिड़की में बैठी उजाले की तलाश में भटक रही थी। कमरे के नितांत सन्नाटे में घड़ी की सुइयों की टिक टिक साफ़ सुनाई पड़ रही थी। रात अपनी रवानगी पर थी। हवा में झूलते पत्तों की खरखराहट और इक्का-दुक्का पंछियों के चहकने से पहर बदलने की आहट हुई। घड़ी पर नज़र डाली रात के डेढ़ बज रहे थे। क्षितिज पर जिधर देख रही थी, लपककर एक तारा टूटा और लकीर

बनाता हुआ धरती पर आ गिरा।

तारे टूटकर जब ज़मीन पर गिरते ही हैं तो लोग तारे क्यों बन जाते हैं? क्या गज़ब का कॉम्बिनेशन बिठाया है ऊपर वाले ने। एक विचार कौंधा।

जागते रहो! जाग ते रहो।

सोसायटी के चौकीदार ने कबीर की भाँति मानो सोए हुओं को आगाह किया। लगा अँधेरा सब कुछ यकसां कर सकता है मगर आवाज़ें नहीं छिपा सकता। बीच पीठ में झुरझुरी महसूस हुई और रोएँ खड़े हो गए। रीता-रीता मन अँधेरे में उजाला तलाशने की कोशिश करने लगा। अक्टूबर की भीगी रात झींगुर की ताल पर थिरकते हुए दिखी। शीशम की टहनियाँ हिल-डुलकर कृत्रिम उजाले में छाया के चकत्ते उकेर रही थीं। लाखों तारों के गुम्फन में से एक, दो, तीन...तारों को तर्जनी से इंगित कर मैंने माँ को टटोलने की कोशिश की।

"माँ, मुझे दिखो न! कहाँ छिपी हो? आज तुमसे बहुत सारी बातें करनी हैं।

बहुत खोजने के बाद भी जब किसी तारे में माँ को रोपित नहीं कर पायी तो एक उदास भाव उठने ही वाला था कि शीशम की अंतिम फुनगी पर एक थरथराता हुआ चटक तारा दिखा।

ये माँ नहीं...तो क्या नानी हैं? हाँ... हाँ... ये नानी ही हैं! मैंने खुद से कहा।

मेरी नानी हँसती बहुत थीं इसलिए उन्हें पहचानने में देर नहीं लगी।

हँसी पसंद नानी की बेटी, मेरी माँ! बहुत सोच-समझकर हँसती और इसी बिना पर अकसर कहा करती थीं– "कृपा, तुम नानी की तरह दिन-दिन हँसती हो! ज़रा तमीज़ सीखो। ज्यादा हँसना, अपने दुःख को पहचानने से इन्कार करना होता है। उस पीड़ा को मौन पीना...जो अपने हिस्से की होती ही नहीं।"

ऐसा मेरी माँ को लगता था। जबकि हर छोटी-बड़ी बात पर मैंने नानी को हमेशा हँसते ही देखा था इसलिए हँसना अच्छा लगने लगा था मुझे। हालाँकि जब मेरा अनुभव पका तो ज्यादा हँसने, बे-बात के हँसने, फ़ालतू में हँसने और अति का हँसने में अन्तर समझ आया। साथ में ये भी कि नानी को कोई भी दुख, दुःखी नहीं बना सकता और सुख, हँसी से ज्यादा कुछ दे नहीं सकता। शायद इसीलिए उन्होंने अपने सुख-दुःख को हँसी के भाव तौल लिए थे।

अब– जब नानी की हँसी याद आई तो रात भी मुझे हँसती हुई-सी लगने लगी। रात की हँसी यानी शून्य का महाविलास। बिरला ही कोई महसूस कर पाता होगा। खिड़की की नींद में खलल न पड़े, सोचते हुए मैं बिस्तर की ओर लौट आयी।

"अरे! आप हँस रहे हैं? क्या वस्तुओं को जागते-सोते नहीं देखा?"

"अरे भई! वस्तुएँ सोती भी हैं और जागतीं भी।"

इस बार सर्दियों में सीलिंग फैन को देखना, कैसे चैन की नींद सोता है। खैर,
आप यकीन नहीं मानोगे फिर भी बहुत दिनों से मेरे साथ किताबें सोती हैं। वे मेरी व्यथा
समझती हैं और मैं उनकी मनोदशा।

खिड़की से उठी और गाव तकिया का सहारा लेकर मैं बेड पर बैठ गयी।
किताबों में से रघुबीर सहाय की कृति उठा ली।
मौका पाते ही कवि कानों में फुसफुसाया—
"हँसो हँसो जल्दी हँसो...!"

"क्यों भई! हँसना इतना आसान है! जो कभी भी, कहीं भी हँस पड़ूँ? बचपन की बात और थी!"

यादों की रेल से नानी की याद जो उतरने वाली थी, साथ में यात्रा करने लगी। बात उन दिनों की है, जब शिमला, मनाली लंदन और गोवा सब नानी के घर में सिमट आते थे।

वार्षिक परीक्षा खत्म होने की प्रतीक्षा माँओं को पूरे वर्ष रहा करती थी। आठवीं की परीक्षा के बाद मैं भी नानी के घर गयी थी। घर के बाहर अहाते में झूला बन चुकी चारपाई पर नानी अकेली बैठी थीं।

सूरज पश्चिम की ओर यूकेलिप्टस की झाड़ में अटका कसमसा रहा था। दो-चार गौरैयाँ अहाते में फुदक कर दाना खोज रही थीं। नानी मुस्कुराते हुए ऊँगली उठाये हवा में गोल-गोल कुछ बना रही थीं और मुँह खोले हँसती जा रही थीं। मैंने चारों ओर देखा, दूर-दूर तक कोई उनके पास नहीं था। माँ आगे बढ़कर नानी से चिपक कर बैठ गयीं। नानी ने हँसकर माँ को पुचकार लिया। मामा बैग उठाये घर में चले गये।

“अरे कोई सुन रहा है? देवा आयी है। ज़रा पानी ले आओ।”

नानी ने माँ को टटोल कर जब तसल्ली से अपने पास बिठा लिया तब मेरे बारे में पूछा।

”देवा, किरपा कहाँ है?”

माँ ने मेरा हाथ उन्हें पकड़ा दिया। नानी ने खींच कर मुझे भी अपने घुटने के पास बिठा लिया और मेरे हाथ की उँगलियाँ, नाख़ून, बाँहें, कंधे, सिर, माथा, कान, चेहरा सब हँसते हुए टटोलती रहीं। उस दिन नानी थोड़ा नहीं, बहुत ज्यादा मुझे अजीब लगी थीं।

नानी को पहली बार जिंदगी को टटोलकर तलाशते हुए देख मेरी बेचैनी सीमा लाँघने को मचल पड़ी थी।

शाम आँगन में बैठ मामा, नाना, और मामा के बेटे-बेटियाँ सब गप लगाते रहे लेकिन मेरा ध्यान नानी से हटकर कहीं लगा नहीं। रात भोजन के बाद सभी सोने चले गए। हमारा बिस्तर बड़ी मामी के कमरे में लगाया गया। जब मामी की नाक बजने लगी यानी वे सो गयीं तो मुझे लगा कि अब वे मेरी बातें नहीं सुनेगीं, मैंने माँ से एक कसक के साथ पूछा–

“माँ, नानी को कब से दिखना बंद हो गया है? या वे जन्मांध हैं?”

“जन्मांध...न! नहीं तो, तुमसे किसने कहा?”

लैम्प की मद्धिम रोशनी में माँ का चेहरा लाल होता दिखा। ज़रा-सी हवा लगते ही अपनों के दर्द कैसे सतह छोड़ आँखों में तिर जाते हैं– देखा मैंने। नानी की पीड़ा को जब माँ की आँखों में टीभते पाया तो मैं खिसककर उनसे चिपक गयी। माँ की धड़कन धुक धुक बज रही थी। पता चला, साँसें प्रेम में ही नहीं, दु:ख में भी बहुत शोर मचाती हैं। माँ टकटकी लगाए दीपक की काँपती लौ को देख रही थीं। उस दिन पता चला माँ के जीवन में जो अपने दुख हैं, उनमें से आधे दुखों का कारण नानी के जीवन में आयी काली आँधी है। मैंने माँ कारुख अपनी तरफ मोड़ते हुए कहा–

“नानी के बारे में कुछ और बताओ न माँ!”

”क्या ही तुझे बातऊँ और क्या करोगी सुनकर?”

“कुछ भी..! सुनना है मुझे!”

“कृपा, नानी अपने ज़मीदार पिता की इकलौती सन्तान थीं।”

उनके पिता बड़े चाव से जिंदगी जीने वाले रईस इन्सान थे। नानी की माँ का देहांत उनकी कम उम्र में ही हो गया था। फिर भी उनके पिता ने दूसरी शादी नहीं की थी। बेटी की परवरिश

"अँधेरे के साथ सामंजस्य बैठाने के बाद नानी को पहले आवाजें प्रिय हुईं। फिर जब खामोशियों की झिड़कियाँ बेतहाशा उन्हें सुनायी पड़ने लगीं तब हर उस मौके पर वे हँसकर उसकी अहमियत गिराने लगीं जो उनके लिए अनिवार्य और कीमती था। लम्हा-लम्हा नानी के सुख-दुःख हँसी में बिला गए। "

अपनी चाची, ताई और भाभियों की मदद से करते गए। नानी के पिता खाने-पीने के शौक़ीन थे। शुद्ध मावे के पेड़ों को भी वे ताज़ा-ताज़ा खाते या पीतल की चाक़ू से छीलकर खाते थे। क्योंकि पेड़ों के ऊपर पड़ी पपड़ी उन्हें दो-चार दिनों में ही सख्त लगने लगती थी। उनकी इस आदत ने पेड़ों के छिलके खाने वालों की एक जमात इकट्ठी कर दी थी। उसी चहल-पहल में नानी का सारा दिन ख़ुशी-ख़ुशी निकल जाता। तुम्हारी नानी अपने पिता के साथ हिली-मिली थीं। वक्त के साथ आँख-मिचौली करते जब वे दस वर्ष की हुईं, इस शर्त पर उन्हें ब्याह दिया गया कि गौना, सोलह वर्ष की होने पर दिया जायेगा। जैसा उनके पिता ने चाहा वैसा ही हुआ।

सोलहवें साल में सौ बीघे ज़मीन की मालकिन बनकर नानी सुसराल आ गयीं। और बिना किसी अकड़-धकड़ के नाना की गृहस्थी सम्हालने लगीं। समय की पीठ पर डोलते-डोलते हवाएँ भी निशान छोड़ जाती हैं, नानी पहले दो से तीन हुईं, फिर चार और फिर देखते-देखते दस बच्चों की माँ बन गयीं। तेज़-तर्रार अपनी सास के साथ भी वे इतनी शांति और सामंजस्य से जीती चली गयीं कि बिना किसी दबाव के उनके सुबह-शाम ढलते और उगते रहे।" कहते-कहते माँ अचानक मौन हो गयीं।

"माँ! पर नानी अपनी बात पर खुद ही क्यों हँस पड़ती हैं? ये तो बुरी बात होती है ?"

"हाँ, होती तो....! लेकिन रात के अँधेरों से ज्यादा दिन के अँधेरे खतरनाक-डरावने होते हैं।"

अंधकार में फँसा आदमी कहीं का नहीं बचता। दिन का अँधेरा सिर्फ़ कमरों के कोने ही नहीं, मन को भी अँधेरे से भर देता है। जहाँ न चाँद जादुई रंगत बिखेरता है, न तारे टिमटिमाते हैं और न ही इनमें रात के जैसी आत्मीयता होती है। दिन के अँधेरों के फेर में पड़कर नानी अपने आपको भूलती जा रही हैं।

माँ ने निदांसी-सी उबासी लेकर करवट बदल ली। मन शांत हुआ तो नाक हरकत में आ गयी। मुझे अजीब सी गंध महसूस हुई। उठकर खुली खिड़की से झाँका तो अहाते में पक्की नाली से बदबू उठ रही थी। उसी को हवा बहाकर मेरे कमरे तक ला रही थी।

"नानी वहाँ कैसे लेट सकती हैं....? वहाँ से कितनी बदबू आ रही है।"

कहते हुए मैंने माँ की ओर जाकर देखा। उदासी ने उन्हें और दबा लिया था। रात का सन्नाटा मेरे कानों में भाँय-भाँय बज उठा। सहमकर मैंने भी लेटकर आँखें मूँद लीं।

"कृपा सो गईं तुम?"

"नहीं.....!"

जो तुम देख रही हो न! नानी के जीवन में अँधेरा बिना किसी संकेत और प्रमाण के आ डटा है। हँसते-मुस्कराते आधा जीवन बुनते-बुनते एक

दिन उन्हें दीए की ज्योति में किरणें फूटती-सी दिखीं। जब उन्होंने बताया तो जानकारों ने उनकी आँखों में मोतियाबिंद उतर आने की बात कही।

उम्र के अधरस्ते पहुँचते हुए नानी के कई बेटे-बेटियाँ गृहस्थी वाले हो चुके थे। उनकी छोटी-गहरी आँखों में मोतियाबिंद की सफेदी फ़ैलना एक आम बात थी। क्योंकि इस मर्ज़ का इलाज़ संभव हो चुका था। पर क्या पता था कि कलकल बहती मीठी नदी को परिस्थियाँ भीतर की ओर मोड़कर ही दम लेगीं। बस एक बात का मलाल आज भी है और बना रहेगा।

पहले उन्हें डॉक्टर को दिखाना ही चाहिए, का निर्णय देर से लिया गया। फिर जब मोतियाबिंद का ऑपरेशन सीतापुर आई हॉस्पिटल के जाने-माने सर्जन एस के मित्तल से करवाने का निश्चय किया गया। वहीं, बार-बार अस्पताल आना-जाना न पड़े, किसी की सलाह पर नानी की दोनों आँखों का ऑपरेशन एक साथ करवा दिया गया। हम सब खुश थे। नानी भी...। पट्टी खुलने का दिन आया तो डॉक्टर ने पूरी सावधानी से पट्टी भी खोली।

दोनों हथेलियाँ मलते हुए उसने चाव से पूछा– "माताजी आँखें खोलिए और बताइए कैसा दिख रहा है?"

"इधर देखिए मेरी ओर! बताइए कितनी उँगलियाँ हैं?"

"अरे! आँखें तो खोलो डाक्टर।" नानी ने कहा।

डॉक्टर को जैसे करेंट छू गया। नाना बताते थे, उसका चेहरा फक्क पड़ गया। आगे झुककर उसने अपना हाथ नानी की आँखों के आगे ऊपर-नीचे किया लेकिन नानी ने पलकें नहीं झपकाईं। क्लीनिक में अचानक अकूत अँधेरा उमड़ पड़ा। चारों ओर सन्नाटा खिंच गया। कुछ मिनटों तक कोई किसी से बोल न सका।

"माताजी एक बार खिड़की के बाहर देखने की कोशिश कीजिए" डॉक्टर ने खेद के साथ कहा।

"कुँए में झाँकने पर जैसा दिखता है, वैसा ही कुछ...।" नानी ने चेष्टा रहित कहा।

नानी, जीवन के दावानल में भीगी लकड़ी-सी धुंधक उठी थीं...., देखने वालों ने महसूस किया था। डॉ. ने हाथ मसलते हुए नाना से कहा–

"आई एम सॉरी, सो सॉरी। इट इस वैरी सेड, ऐसा होना नहीं चाहिए था। इस फ़ील्ड में काम करते हुए मुझे बीस वर्ष हुए पर ऐसा केस तो कभी नहीं आया।"

अँधेरे की छटपटाहटें डॉक्टर के चेहरे पर पसर गईं मगर नाना अपने निर्णय पर शर्मिंदा थे या नहीं, ये कोई नहीं जान पाया।

हाँ, नानी की आँखों पर काली ढक्कनदार पट्टी ज़रूर बँधवाकर घर लौट आए थे। उसके बाद नानी के जीवन की विधि जो बिगड़ी, उन्होंने क्या किसी ने कभी नहीं सोचा था।

नाना पूजा के दौरान कई दिनों तक चुपके-चुपके रोते रहे थे। बताने को क्या! लोग कुछ भी बताते रहें! लेकिन जो महिला न कभी खद्दर पर रीझी, न सिल्क के लिए मचली, उसने अपनी आँखों का जाना भी सहज स्वीकार लिया। अचम्भा तो इसका था।

उनके जीवन में पहले वस्तुओं ने फिर व्यक्तियों ने चुपके से अपनी-अपनी जगहें बदल लीं। नानी किसी गरीब की तरह बस सारा दिन हँसी को धोने-सुखाने में गुजारने लगीं।

अँधेरे के साथ सामंजस्य बैठाने के बाद नानी को पहले आवाजें प्रिय हुईं। फिर जब खामोशियों की झिड़कियाँ बेतहाशा उन्हें सुनायी पड़ने लगीं तब हर उस मौके पर वे हँसकर उसकी

अहमियत गिराने लगीं जो उनके लिए अनिवार्य और कीमती था। लम्हा-लम्हा नानी के सुख-दुःख हँसी में बिला गए।

ज़ाकिर हुसैन तबले की रियाज़ के लिए जितने प्रतिबद्ध होंगे, नानी निरंतर हँसी के लिए प्रयासरत रहने लगीं और देखते-देखते उनकी साँसों में हँसी जीवन की तरह उतर गयी।

अँधेरे से भरे ठोकर खाए दिनों की शुरुआत में जब वे एक जगह बैठे-बैठे ऊब जातीं तो दीवारों का सहारा लेकर चल पड़तीं, और किसी न किसी से टकराकर फिर बैठ जातीं। हाथों से दीवारों को टटोलती, कानों को उनसे लगाकर जीवन की आहट ऐसे लेतीं कि देखकर मन कसैला हो जाता। आँगन में बैठ कर चौके की ओर दीदे फाड़ कर देखतीं तो मन होता कैसे अपनी आँख से थोड़ी-सी रोशनी लेकर अम्मा की आँख में रख दूँ। कोई किसी को पुकारता तो उसकी दिशा में उठ पड़तीं और फिर टकरा जातीं। माथे पर चोट फूल आती, बैठकर सहलाते हुए ज़ोर से हँस पड़तीं। उनके दिन इतने हँसने लगे कि रात की बेचैनियाँ तिरोहित होती चली गयीं।

इतने पर भी दुःख का मन नहीं भरा और वह ज्यादा नुकीला होकर उन्हें गुदगुदाने लगा तो उनका हँसना तीव्र से तीव्रतर होता चला गया। इस तरह गझिन दुख के एक-दो दृश्यों में नहीं, तेरी नानी दयनीयता की पूरी पिक्चर में बदल गयीं।"

माँ ने सिसक कर अब मेरी ओर से पीठ फेर ली थी।

हमेशा मेरी माँ को लगता रहा कि उनकी माँ अर्थात नानी अपनी पीर छिपाने के लिए हास-परिहास का चोंगा जबरन पहने रहती हैं। वरना किसी न किसी से तो उन्हें शिकायत होती? कभी तो मन का क्षोभ उगल

कर वे अपना मन हल्का कर लेतीं। लेकिन नानी को न बहू, बेटे, बच्चों से शिकायत थी और न ही ऊपर वाले के प्रति नाराज़गी। मानो दुनिया के सारे दुःख एक तरफ और नानी की हँसी एक तरफ।

फिर जैसे-जैसे मैं बड़ी होती गयी–देखा, नानी के हिस्से की धूप जब– सब में बंट गयी, नानी छाँव-भरी आहटें तलाशने के लिए अकेले मजबूर थीं। धीरे-धीरे नानी अपने सुख-दुःख के उलीचन में हँसी को गूँदने लगीं।

घर के चेहरे पर जो स्थाई रूप से तनाव जमा था, पिघल गया। सभी अपनी-अपनी ओर लौट गए और नानी सबकी ओर लेकिन पहुँची कहीं नहीं। इतने पर भी समय अपनी भड़ास उगलता रहा।

जैसे ही नानी का समय पूरा अँधा हुआ अब उन्हें सुबह से लेकर शाम तक किसी न किसी की जरूरत पड़ने लगी। और इस तरह न चाहते हुए भी लोगों की खिसियाहटें बढ़ने लगीं। इस बात की भनक लगते ही नानी ख़ुशी-ख़ुशी अपने कामों को आगे की ओर स्थगित करना सीखने लगीं।

अब वे कपड़ों के रंग ऊँगलियों से टटोलतीं तो बिना चोटी हफ़्ते-हफ्ते गुज़ारने लगीं।

जुएँ उनके स्थाई संगी बन गए।

खाना खिलाने वाले को जल्दी होती तो दाल-सब्ज़ी, दही की कटोरियाँ थाली में उड़ेल देते। जैसे गाय का चारा। उन्हें दिया जाने वाला गिलास भर दूध हमेशा ही ज्यादा गर्म रहने लगा। बड़ी मामी ने परमानेंट उसपर पानी का पहरा लगा दिया।

तीन कपड़ों में से उनका साथ सबसे पहले ब्लाउज ने छोड़ा। नामुराद ऐसे कहीं दब जाता कि

खोजे नहीं मिलता। अब बिन बटनों के ब्लाउज का तो खोना ही ठीक था। उसके बाद जब पेटीकोट भी
उन्हें समय से नहीं मिलने लगा तो द्रोपदी की तरह वे एकवस्त्रा हो गयीं और जीवन भर तमाम गाँठ बाँधकर धोती पहनती रहीं।

खैर, धोती उनके प्रति सदा समर्पित इसलिए बनी रही क्योंकि नानी खुद उसे धोकर नल की टोंटी या गुसलखाने के पास खूँटी पर जैसे टाँग देती वैसे ही दूसरे दिन उन्हें मिल जाती।

मैंने देखा, गरमी की धूप उनके पायताने घंटों खड़ी रहती। नहाने को तीसरा पहर लग जाता। तो भी नानी उफ़ न करतीं। चप्पल पलंग के पास न मिलने पर नंगे पाँवचल पड़तीं। तलवों में कुछ गड़ जाता तो डाँटना तो दूर, उनके हँसने में इजाफ़ा हो जाता।

प्यास जब गला खरोंचती तो उनकी हँसी का ताप बढ़ जाता।

इस बात का अंदाजा मेरी माँ को हुआ था जब उन्होंने ख़ुद प्यास लगने पर धोखे से पूछ लिया था–

”अम्मा पानी पियोगी?”

नानी दो गिलास पानी एक साथ गटक गयी थीं। नानी के मौन पर माँ स्तब्ध थीं। फिर तो उनकी उम्र ज्यों-ज्यों ढलती गयी, सुबह से लेकर शाम तक उन्हें अपनी बारी का इंतज़ार रहने लगा।

वहीं उनकी हँसी अपना दायरा बढ़ाती चली गयी।

माँ अति व्यस्तता में भी कभी-कभी अचानक बोल पड़तीं–

“कृपा, नानी की हँसी के नीचे अनगिनत ज़िन्दा नासूर हैं। काश! कोई हँसी का लिहाफ़ उठाकर मरहम लगा देता!”

“मैंने देखा, गरमी की धूप उनके पायताने घंटों खड़ी रहती। नहाने को तीसरा पहर लग जाता। तो भी नानी उफ़ न करतीं। चप्पल पलंग के पास न मिलने पर नंगे पाँवचल पड़तीं। तलवों में कुछ गड़ जाता तो डाँटना तो दूर, उनके हँसने में इजाफ़ा हो जाता।...“

दुनिया की नंगी सच्चाई को आँख वालों से ज्यादा बिना आँख के लोग साफ़ देख लेते हैं। हँसी अपने बचाव में बड़े बेतुके तरीके अपनाती है।

मुझे नानी को देखकर समझ आ गया था। उसके बाद नानी के घर जब भी जाना हुआ, उन्हें नहलाना, बालों में कँघी करना, घर में इधर-उधर घुमाना, मैं अपने जिम्मे ले लेती रही थी।

जब आँखें मींचे नानी हँसी में लहालोट नज़र आतीं तो मैं उन्हें नीले आसमान की रंगत, भोर की नारंगी धूप, अबोध मुस्कान, अपनी हथेली पर मेंहदी का गेरुआ रंग, दिखाने को मचल उठती लेकिन उम्र की ढलान पर वे पहले से ज्यादा हँसने और सोने लगी थीं।

उनकी छाती से पल्ला सरकता तो मुझे बहुत झेंप लगती। एक दिन मैंने उनसे कहा–

”नानी आप ब्लाउज पहनने लगो। मुझे अच्छा नहीं लगता।”

“अच्छा ठीक है। किरपा, अपनी आजी की अँगिया अब के आना तो लेती आना।”

नानी इतना बोलकर तेज़-तेज़ हँसने लगी।

हाथ चौखट पर रखा था और किसी ने दरवाज़ा खोल दिया। उनकी कानी ऊँगली पिर गयी। नाख़ून नीला पड़ गया। देखने वाले कराह उठे लेकिन नानी उस टीसती नील पर भी हँसती रहीं।

"नानी, हँसने और रोने में कितना अंतर होता है? आप इतना क्यों हँसती हो? जबकि आपके मुँह में एक भी दाँत नहीं, जिन्हें देखकर कोई दूसरा भी हँस सके?"

इस बार मैंने उनसे गुस्से में आकर पूछा था।

"किरपा,रोना किसी को सीखना नहीं पड़ता और हँसी सीखने में उम्र निकल जाती है। अब जबकि हमें हँसना आ ही गया है तो सोचती हूँ कि आखरी दम तक बस हँसती रहूँ..!"

कहते-कहते नानी रुक गईं लेकिन उनके शब्दों की आँच मेरे मन को तपाने लगी थी। उनकी हँसी मेरे भीतर हिल्की बनकर उभरना चाह रही थी। तब तक नानी ने टटोलकरमुझे अपनी गोद में खींच लिया और नरम हथेली से माथा सहलाकर हँसने लगीं। नानी के काले वर्तमान ने विस्तृत हो मुझे ढँक लिया।

गरमी की छुट्टियाँ फिर आयी थीं। नानी के घर जाने की तैयारियों में माँ जी-जान से जुटी थीं तभी ननिहाल से खबर आई–

"नानी नहीं रहीं— उनकी मृत्यु का कारण डॉक्टरों ने अति ख़ुशी बताया था।"

माँ, ऐसी कौन-सी ख़ुशी थी जो नानी सहन नहीं कर सकीं...?" मैंने पूछा।

"तुम चुप रहोगी? एक! दम! चोप...! जाओ एक तरफ बैठो जाकर कृपा!"

रोते हुए माँ ने इतनी व्यग्र कठोरता से कहा कि मेरी अधपकी भावुकता चटख गयी। मैं जानती थी कि उत्तर उन्हें मालूम था मगर वे देना नहीं चाहती थीं। मैं जाकर दूर बैठ गयी। रोते-रोते माँ ज़मीन पर उँगलियाँ चला रही थीं जैसे कुछ लिख रही हों। क्या लिख रही होंगी...? नानी की हँसी या उनका दुख, जिसे उन्होंने हँसी की परतों में छिपाया था....?

जागते रहो! जागते रहो।

चौकीदार की ख़ुमारी में डूबी, भरभरायी आवाज़ मुझे वर्तमान में लौटा लायी।

नज़र घड़ी पर पड़ी तो महसूस हुआ कि रात अपने अंतिम चरण में डोल रही थी। सहाय की कविता 'हँसो, हँसो जल्दी हँसो' की किरचें अर्थ के साथ जेहन में गहरे धँस चुकी थीं।

"समझा था जिसे हँसी का नगीना, वही दरका हुआ शीशा निकला।"

किताब बंदकर मैंने तकिया के नीचे खिसका दी और आँखें मूँद लीं।

-कल्पना मनोरमा

सूर्यकुमार पांडेय

व्यंग्य लेखक और कवि। जन्म: 10 अक्टूबर,1954, उत्तरप्रदेश के बलिया जिले के लखौलिया गांव में जन्में एवं वर्तमान में लखनऊ (उत्तर प्रदेश) में रह रहे सुप्रसिद्ध व्यंग्य लेखक तथा कवि सूर्यकुमार पांडेय जी की 30 पुस्तकें प्रकाशित हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका सहित कई देशों में काव्यपाठ। भारत सरकार, प्रदेश सरकार और अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं से पुरस्कृत सम्मानित हैं।

ईमेल - pandeysuryakumar@gmail.com

1. शर्म से आमना-सामना

-सूर्यकुमार पांडेय

"इस डूब मरने वाली बात का मुहावरे के तौर पर चलन भी एक आम बात है। वैसे भी डूबने के लिए तालाब, पोखर, कुएँ, बावड़ियाँ वगैरह बची ही कहाँ हैं? भूजल दोहन के इस क्रूर समय में मनुष्य और जल, दोनों का स्तर रसातल को पहुँच चुका है। आदमी का खुद का पानी इतना मर चुका है कि वह पानी के मरने तक की परवाह नहीं करता..."

मैंने अक्सर लोगों को एक-दूसरे से यह कहते हुए तो सुन रखा था कि तुमको शर्म भी नहीं आती! लेकिन एक दिन मुझे शर्म स्वयं सामने से आती हुई दिखलाई पड़ गई। वह शर्म जो कभी हट्टी-कट्टी हुआ करती थी, आज सींक-सलाई हो गई थी। उसका चेहरा उतरा हुआ था।

जब वह मेरे पास से गुजरी, तब मैंने उसे टोकते हुए पूछ ही लिया, '"कहाँ से आ रही हो और किधर जा रही हो?"

वह झुँझलाती हुई बोली, "यह मत पूछिए कि मैं कहाँ से आ रही हूँ, मगर यह जरूर बता सकती हूँ कि मैं कहाँ जा रही हूँ?"

मैंने कहा, "चलो, यही बता दो।"

शर्म अपने दोनों पैरों को पटकती हुई बोली, "मैं डूबकर मरने जा रही हूँ!"

मुझे यह बात तो पहले से ही पता थी कि लोग जब किसी बात पर क्रोधित होते हैं, तब सामने वाले से कहते हैं कि शर्म से डूब मरो। यह दीगर बात है कि आज तक किसी ने यह नहीं बताया कि कोई शर्म से कहाँ जाकर डूब मरे? इसी नाते लोग इस बात को निर्लज्जतापूर्वक एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल दिया करते हैं।

इस डूब मरने वाली बात का मुहावरे के तौर

पर चलन भी एक आम बात है। वैसे भी डूबने के लिए तालाब, पोखर, कुएँ, बावड़ियाँ वगैरह बची ही कहाँ हैं? भूजल दोहन के इस क्रूर समय में मनुष्य और जल, दोनों का स्तर रसातल को पहुँच चुका है। आदमी का खुद का पानी इतना मर चुका है कि वह पानी के मरने तक की परवाह नहीं करता। इसके चलते शर्म से चुल्लू भर पानी में डूब मरने की कहावत भी अब बेमानी हो चुकी है।

शर्म के डूबकर मरने के लिए जाते हुए देखना अपने आप में एक विरल घटना थी, जो आज साक्षात मेरी आँखों के सामने घटित हो रही थी। मुझे विश्वास तो नहीं हो रहा था लेकिन उस पर भरोसा करने के सिवा और कोई चारा भी तो नहीं था।

यदि इस विश्वास को हम अपनी जिंदगी से निकाल दें तो हमारा जीना मुहाल हो जाएगा। यह विश्वास ही है जो हमें ज़िंदा रखे हुए है। हमें भरोसा रहता है कि संकट के समय ईश्वर हमें बचा लेगा। इसी विश्वास के चलते जब हम बीमार होते हैं, तब उपचार करने वाले चिकित्सक को धरती के भगवान के रूप में पाते हैं।

वह अलग बात है कि इसमें भी अपवाद हुआ करते हैं। हरेक क्षेत्र में मजबूरी का फायदा उठाने वाले निर्लज्ज व्यक्ति अपनी धन-पिपासा के चलते कुछ बेशर्मी वाले काम करते ही हैं। ऐसे ही लोगों के लिए चचा गालिब लिख गए हैं, 'काबा किस मुँह से जाओगे गालिब, शर्म तुमको मगर नहीं आती।'

उधर शर्म मेरे सामने खड़ी थी और इधर मैं विश्वास पर चिंतन करने लग पड़ा था। खैर, शर्म ने मुझे झकझोरते हुए मेरी तंद्रा को भंग किया और कहने लगी, "मैंने तो अब यह अंतिम निर्णय ले लिया है कि डूब मरूँगी। जब सभी लोगों ने मेरा त्याग कर दिया है, तो फिर इस धरती पर रहने का लाभ ही क्या है? आज के समय में लोग मुझसे अधिक बेशर्मी से वास्ता रखने लग गए हैं। एक दौर वह भी हुआ करता था, जब मनुष्य अपने चरित्र और नैतिक मूल्यों की रक्षा के लिए मेरी आड़ लिया करता था। वह समाज से डरता था और कोई भी निर्लज्ज कृत्य करने से पहले सौ बार सोचता था कि लोग क्या कहेंगे? आज इंसान की बेशर्मी का आलम यह हो गया है कि वह खुलेआम गाता हुआ घूम रहा है- कुछ तो लोग कहेंगे, लोगों का काम है कहना।"

मैंने कहा, "इतना निराश होने की भी ज़रूरत नहीं है। नकारात्मकता के समय में भी अपने सकारात्मक विचार सुरक्षित रखने चाहिए। शर्म, लाज, हया तो मनुष्य के आभूषण हुआ करते हैं। सोचो भला, जब तुम ही नहीं रहोगी, तो मानवता दरिद्रता के फूलों की माला पहने हुए कितनी विद्रूप दिखलाई पड़ेगी?"

शर्म खिसियानी हँसी हँसती हुई बोली, "यही बात तुम राजनीति, मज़हब और उद्योग-व्यापार में लिप्त उन लोगों को जाकर क्यों नहीं समझाते हो, जिन्होंने अपनी शर्म बेच खाई है। आज सभी क्षेत्र धंधे में बदल चुके हैं। पैसा ही भगवान हो गया है। लोगों की आँखों का पानी तक मर गया है। इससे पहले कि मैं जितनी भी बची हुई हूँ, लोग उसे भी बेच दें, मेरा मर जाना ही बेहतर होगा।"

मैंने शर्म का हाथ पकड़ कर उसे वहाँ ले गया, जहां उसकी बड़ी बहन ईमानदारी की कुटिया थी। हालाँकि ईमानदारी का स्वास्थ्य भी कुछ ठीक नहीं दिखलाई दे रहा था, फिर भी उसने लपककर शर्म को अपने गले से लगा लिया। दोनों सगी बहनें एक दूसरे से लिपटकर देर तक रोती रहीं।

मैं यह सोचकर आश्वस्त हुआ और वापस लौट आया कि जब तक इस धरती पर ईमानदारी बनी रहेगी, तब तक शर्म भी बची रहेगी।

ब्लर्ब-

इस डूब मरने वाली बात का मुहावरे के तौर पर चलन भी एक आम बात है। वैसे भी डूबने के लिए तालाब, पोखर, कुएँ, बावड़ियाँ वगैरह बची ही कहाँ हैं? भूजल दोहन के इस क्रूर समय में मनुष्य और जल, दोनों का स्तर रसातल को पहुँच चुका है। आदमी का खुद का पानी इतना मर चुका है कि वह पानी के मरने तक की परवाह नहीं करता।

-सूर्यकुमार पांडेय

2. प्रतिष्ठा का प्रश्न

"तुम्हारे घर पुलिस वाले काहे को आए थे?' मिश्रा हंसता हुआ बोला, 'प्यारे भाई, मैंने अपने बेटे के रिवॉल्वर के लिए आवेदन किया था। वे दोनों उसी के वेरीफिकेशन के लिए आए हुए थे। गली वालों को क्या पता, खुसर-फुसर करने लग गए। एक-दो ने पूछा तो मैंने भी जानबूझ कर गोलमोल जवाब दे दिया। उनको भरोसा हो गया, यह मिश्रा पक्का किसी स्कैंडल में फंस गया है।..."

इन दिनों अपनी वाली श्रीमती जी रोज ही ताने मारती रहती हैं। वह कहती हैं, आपको अपने खानदान की इज्जत का डॉलर बराबर भी खयाल नहीं। कभी तो ऐसा कुछ करिए कि हमारे दरवाजे पर भी दो-चार पुलिस वाले दर्शन दें। मोहल्ले में कभी हमारी नाक भी ऊंची हो। आय से अधिक संपत्ति के मामले में अपने पड़ोसी वर्मा भाई साहब के यहां छापा पड़ चुका। शर्मा जी के यहां से जमाखोरी का जखीरा बरामद हो चुका। चार मकान आगे वाले कुलकर्णी को तो करप्शन की कंप्लेंट पर सीबीआइ वाले दिन दहाड़े उठा ले गए थे। कोने वाले खन्ना जी ने तो, सुनती हूं, ऐसी घोटालेबाजी कर रखी है कि ईडी की गिरफ्त में एक बार आए, तो आज तक वहीं पर सवालों के जवाब दे रहे हैं।

अब कॉलोनी में इकलौता हमारा ही दरवाजा रह गया है, जहां पर पुलिसिया चरण-रज नहीं पड़ी। एक बार तो उनके पांव छापेमारी के बहाने डलवा ही लीजिए। अब तो मुझे आपकी वाइफ कहलाने में शरम आने लग गई है। वर्माइन चिढ़ाती हैं। शर्माइन अपना मुंह फेर लेती हैं। मिसेज कुलकर्णी ऐंठी घूमती है। खन्ना की घरवाली ठीक से बात तक नहीं करती। आपको अपनी प्रतिष्ठा का तो खयाल है नहीं, मेरी इज्जत का तो कचरा मत कीजिए। या तो इस इज्जतदार कॉलोनी से मकान बेचकर किसी और जगह दूसरा घर ले लीजिए, या फिर मैं ही जाती हूं, किसी दरोगा को कल चाय पर बुला लाती हूं।

सच कहती हैं अपनी श्रीमती जी । पत्नी की इज्जत बचाना प्रत्येक पति का धर्म होता है। तो मुझे भी ऐसा कुछ करना ही चाहिए कि घर-परिवार में शांति कायम रहे। मेरे मित्र मिश्रा से मैंने इस बाबत चर्चा की। वह बोला, 'यार, परसों तक मैं भी इसी प्रकार की प्रतिष्ठा के सवाल में उलझा हुआ था। भला हुआ कि कल दो पुलिस वाले घर आ गए। अपनी तो नाक कटने से बच गई।' मैंने कहा, 'भाई मिश्रा, तुम तो शरीफ बंदे हो। तुम्हारे घर पुलिस वाले काहे को आए थे?' मिश्रा हंसता हुआ बोला, 'प्यारे भाई, मैंने अपने बेटे के रिवॉल्वर के लिए आवेदन किया था। वे दोनों उसी के वेरीफिकेशन के लिए आए हुए थे। गली वालों को क्या पता, खुसर-फुसर करने लग गए। एक-दो ने पूछा तो मैंने भी जानबूझ कर गोलमोल जवाब दे दिया। उनको भरोसा हो गया, यह मिश्रा पक्का किसी स्कैंडल में फंस गया है।

'अब मैं मोहल्ले में चौड़े से निकलता हूं। हर दूसरा आदमी सलाम मारता है। पड़ोसियों के बदमाश छोरे पांव छूकर आशीर्वाद मांगते हैं। पड़ोसिनें सम्मान की दृष्टि से देखती हैं। रिश्तेदारों को भी खबर हो ली है। बधाइयां मिल रही हैं। तो पांडेजी, तुम भी ऐसा करो कि एन-केन या फिर लेन-देन प्रकारेण अपने दरवाजे पर पुलिस के पांव पड़वा ही डालो। तभी घर वालों की ही नहीं, समाज की निगाह में सिर उठाकर जीने के लायक हो सकोगे।'

सच बात है। आज के धिक्कारग्रस्त समय में वही व्यक्ति सीना चौड़ा करके रह सकता है, जिस पर दो-चार मुकदमे चल रहे हों, जो हवालात के सवालात पर अग्रिम रहे, या फिर अग्रिम जमानत पर रहे। जिसका अखबारों में प्रथम पृष्ठ पर नाम छपे, जिसके चेहरे पर कैमरे की फ्लैश लाइटें चमकें, बाइटें बनें। पीछे पुलिस पड़ी हो, आगे मीडिया वाले। वरना सूखे सन्नाटे में जीना भी कोई जीना है लल्लू!

'तो मुझे क्या करना चाहिए?' मैंने अपनी अंतरात्मा से पूछा। वह अभी पूरी तरह से सोई नहीं थी। सो उसने तत्काल उत्तर दिया, 'अबे अहमक, समय के साथ चलना सीख। चौराहे का रुख कर। किसी ड्यूटी के पैबंद सिपाही को सौ-पचास का नोट पकड़ा। उसको अपने घर बुला ला। कहना, वर्दी में आए। दो-चार पड़ोसियों की कॉल बेल्स बजाए। उनसे तुम्हारे बारे में दरयाफ्त करे। यह न बताए कि किस वास्ते आया है? फिर देखियो, तू रातोंरात किस तरह से सम्माननीयों की श्रेणी में सूचीबद्ध हो लेता है!'

जागृत इंसान वही है, जो अपनी अंतरात्मा की आवाज को सुने। इसी अंतरात्मा की आवाज पर हजारों नेताओं ने दल बदल लिए। निष्ठाएं बदल लीं। घोटाले किए। कर रहे हैं। मैं भी अपनी प्रतिष्ठा में चार चांद लगाने के नाम पर दो दरोगाओं को पेशगी दे आया हूं। कल हमारे यहां भी पुलिस वाले आएंगे। हो सकता है, घर से दो आलुओं को सोना समझकर उनकी बरामदगी भी कर लें। अपनी प्रतिष्ठा दांव पर है। देखता हूं, बचती है कि लुटती है।

-सूर्यकुमार पांडेय

प्रगति टिपणीस

लखनऊ, उत्तर प्रदेश में जन्मी तथा पिछले तीन दशकों से मास्को, रूस में रह रहीं प्रगति टिपणीस 'अनन्य-रूस' पत्रिका की संपादक हैं। रूसी भाषा से हिंदी और अंग्रेज़ी में अनुवाद कार्य से जुड़ी प्रगति, पाँच सदस्यीय दल के साथ हिंदी-रूसी मुहावरा कोश और हिंदी मुहावरा कोश पर कार्य कर रहीं हैं। मॉस्को की भारतीय संस्था 'हिंदुस्तानी समाज, रूस' की सांस्कृतिक सचिव हैं।

ईमेल - pragatitipnis@gmail.com

वजूद

-प्रगति टिपणीस

"बेचैनी और अजीब-सा खिंचाव उसे अपनी जकड़ से आज़ादी नहीं दे रहे थे। ख़यालों की उड़ान ने अचानक उसे अपने कश्मकश से निकलने की एक राह दिखाई, वह समझ गयी वह क्या चाहती है। वह उठी, उसने अपने ट्रैवल एजेंट को फ़ोन मिलाया, दिल्ली की एक टिकट बुक करायी। फ़ौरन अपना बैग पैक करने में लग गयी। इन कामों से उसमें फुर्ती आ गयी..."

अचासाहिरा दफ़्तर से घर लौटी, थोड़ी उदास थी पर यह कोई नई बात नहीं थी। न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में काम करते उसकी लगभग आधी ज़िन्दगी उस शहर की सड़कें नापने और अपनी ज़िन्दगी का समीकरण साधने में गुज़री थी और इतनी व्यस्तता के बाद भी घर लौटने पर उसे ख़ालीपन महसूस होता था। जितना अधिक समय उसका रौशनियों का नगर कहलाने वाले शहर में गुज़र रहा था उसकी आँखें मन में गहराते किसी अन्धकार की राज़दार होती जा रही थीं। लेकिन यह राज़ सिर्फ़ उसे दिखता था क्योंकि दूसरों के पास उसकी तरफ़ देखने की फ़ुरसत न थी। आँखों की फ़ितरत में नहीं होता रहस्यों को दबा कर रखना, दिल-समंदर में उफान आया नहीं, कि सारा खारा पानी बाहर होता है, भले ही वह उन सीपियों से न टपके। साहिरा के अंदर कोई समंदर गहराता जा रहा था। आजकल वह अकेले रहती है। पति सलमान से उसका तलाक़ अमरीका पहुँचने के तीन साल बाद हो गया था, बच्चे तब तक स्कूल जाने लायक़ हो गए थे। उसका बेटा समर सॉफ्टवेयर इंजीनियर है और सैंटा क्लारा में गूगल के हेड ऑफ़िस में

आर्टिफ़ीशियल इंटेलिजेंस के एक विभाग का प्रमुख है। उसे फ़ोन पर आजकल अम्मी थोड़ी ज़्यादा संजीदा लगती तो हैं, पर वह उसको ज़िन्दगी की भाग-दौड़ और व्यस्तता का सबब ही समझता है। इंसान के लिए आज इंसानी जज़्बात समझने से आसान हो गया है मशीनों को कुछ समझाना-सिखाना!

साहिरा की बेटी सहर गायिका है और बैंड 'ओशन-ग्रीन' से जुड़ी हुई है, वह जब भी फ़ोन करती है उसके पास इतना कुछ बतलाने को होता है कि सुनने की बारी ही नहीं आती है। अम्मी हमने फ़लाँ शहर के इस स्टेडियम में, इस जगह पर फ़लाने क्लब में प्रोग्राम दिया। ऊँचे स्वरों में बयाँ होते कामयाबियों के उसके क़िस्सों के पीछे छिपी उदासियाँ माँ को सुनायी दे ही जाती थीं। साहिरा उसकी बातें सुनती और हताशा के तमाम बोझों के बावजूद उसका हौसला बढ़ाने के लिए शब्द तलाश ही लेती थी।

उस दिन न जाने क्यों उसके सारे ख़याल ख़ुद से ही जुड़े हुए थे। वह सोफ़े पर बैठी सोच रही थी कि वह आगे क्या करे। सहर और समर तो अच्छा जम-बस गए हैं, उनके बारे में वह निश्चिन्त थी। कोई बात थी जिसे वह शब्दों में ढाल नहीं पा रही थी लेकिन वह कमरे की हवा में मौजूद थी, खिड़कियों से आते शोर में दबी थी, उसके दिल की गहराइयों में दुबकी बैठी थी और मानो चाहती थी कि उसे खुले मैदानों में दौड़ने का मौक़ा मिले, पेड़ों के नीचे बैठने की फ़ुरसत, संकरी गलियों में कूदते-फुदकते चलने का एहसास और दोनों हाथों से गली के दोनों तरफ़ के घरों के दरवाज़े एक साथ खटखटा पाने का आनंद। अचानक उसे लगा कि दरवाज़े की घंटी बज रही है। वह वीडियो-कैम तक गयी पर वहाँ कोई नहीं था। उसे फिर कोई दस्तक सुनायी दी, लेकिन न्यूयॉर्क में तो ऐसा होता नहीं। वह वापस आकर बैठ गई। बेचैनी और अजीब-सा खिंचाव उसे अपनी जकड़ से आज़ादी नहीं दे रहे थे। ख़यालों की उड़ान ने अचानक उसे अपने कश्मकश से निकलने की एक राह दिखाई, वह समझ गयी वह क्या चाहती है। वह उठी, उसने अपने ट्रैवल एजेंट को फ़ोन मिलाया, दिल्ली की एक टिकट बुक करायी। फ़ौरन अपना बैग पैक करने में लग गयी। इन कामों से उसमें फुर्ती आ गयी, उसके पैरों में उछाल आ गया, होंठ पुराने हिंदी गाने गुनगुनाने लगे।

आमतौर पर अपने खाने के लिए वह फ़्रिज से कोई प्री-कुक्ड पैकेट निकालकर उसपर लिखे निर्देशों के अनुसार तैयार करके खा लेती है, लेकिन उस दिन जब दो घंटे में उसे एयरपोर्ट जाना था, उसने अपने लिए रोटी, सब्ज़ी और रायता बनाया, इत्मीनान से खाया। फिर नहा-धोकर फटाफट तैयार हुई और टैक्सी में बैठकर हवाईअड्डे चल दी। रात के दो बज रहे थे, शहर सोया तो नहीं था लेकिन उनींदा था। उस वक़्त सड़क किनारे की टिमटिमाती बत्तियाँ जो आमतौर पर
उसे रौशन नहीं कर पाती थीं अपनी गर्मी से उसे सहला रही थीं।

दिल्ली पहुँच कर उसने जब अपना फ़ोन खोला तो पाया कि समर और सहर ने उसे बहुत सारे मैसेज उतने ही सारे जज़्बात के साथ

भेजे हैं; कुछ संदेशों में नाराज़गी थी, कुछ में ग़ैर ज़िम्मेदाराना बर्ताव के लिए कटाक्ष, कुछ में हैरानी और आख़िरी वालों में चिंता। उसने तुरंत ही उन दोनों को मैसेज भेजा कि मैं दिल्ली में हूँ और नहीं जानती कब वापिस लौटूँगी। दूसरी तरफ़ से उसी पल संदेशों की बौछार होने लगी। साहिरा का फ़ोन लगभग १५ घंटे हवाईजहाज़ में होने के कारण बंद रहा था, इस बीच आदतन सुबह-सुबह जल्दबाज़ी में समर और सहर ने अम्मी को फ़ोन किया था, एक बार नहीं दर्जनों बार; और हर बार उन्हें यही सन्देश मिलता था कि फ़ोन कवरेज से बाहर है। दोनों ने आपस में भी कई बार बात की और हर बार एक-दूसरे को यही उत्तर देते कि अम्मी से बात नहीं हो पा रही है। उन दोनों ने हैरत से पूछना शुरु किया कि साहिरा ने ऐसा क्यों किया, उन दोनों को बता कर भी तो वह हिन्दुस्तान जा सकती थी। साहिरा वही तो नहीं चाहती थी, उसका मन पूरी तरह से आज़ाद होना चाहता था, वह बिलकुल वैसे जीना चाहती थी जैसे उसका मन करे, वह वहीं जाना चाहती थी जहाँ उसके पाँव ले जाएँ। पर शुरुआत उसे अपने शहर लखनऊ से करनी थी।

उसने अगले दिन की शताब्दी की टिकट भी न्यूयॉर्क से बुक करा ली थी। वह रात उसने एक होटल में बितायी। वैसे उसके कई रिश्तेदार और जान-पहचान वाले दिल्ली में रहते थे लेकिन उसे अपनी दुनिया में अपनी शर्तों पर कुछ दिन रहना था। वह बहुत साल बाद भारत आयी थी और दिल्ली में बिछे सड़कों के जाल और गाड़ियों की भीड़ ने उसे थोड़ा चौंका दिया था। उसके तसव्वुर में जो दिल्ली थी, वह आज की तुलना में कहीं अधिक सुस्त और शांत थी।

वजह समय का अंतर रही हो या मन में ख़ुशी और बेचैनी का साथ-साथ होना, उसे उस रात पल भर भी नींद न आई। सुबह वह स्टेशन वक़्त से काफ़ी पहले पहुँची। गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर आ चुकी थी, वह उसमें जाकर बैठ गई। उसकी पलकें भारी हो रही थीं, वे आपस में जुड़ गईं। बंद पलकों से वह फिर अपनी दुनिया को याद करने लगी-

बचपन का घर, मोहल्ला, दोस्त, नीचे की दुकानें, उसके दुकानदार, पड़ोसी, अपने खेल, अपनी ज़िन्दगी, और भी न जाने क्या क्या। इतने साल बीत जाने के बाद भी जैसे कि उसे सब बातें साफ़ और शांत पानी में दीखती परछाईं की तरह याद थीं। वक़्त का पानी लम्बा रास्ता तय कर चुका था लेकिन उसकी इन यादों को धो न पाया था। उसे रुक-रुककर इस बात की हैरानी भी हो रही थी कि अब भी उसे अपने बारे में सोचने का हौसला और हुनर आता था, नहीं तो उसके पिछले तीन दशक अपने अलावा सबके बारे में सोचने में गुज़रे थे। गाड़ी चली, पहले तो उसकी नज़रें उन्हीं नज़ारों को तलाशती रहीं जो बचपन के सफ़र के दौरान वह देखा करती थी। लेकिन उसे कुछ भी तब जैसा न मिला। गाड़ी वातानुकूलित थी, शीशे सारे बंद थे, उसकी रफ़्तार पहले वाली गाड़ियों से बहुत तेज़ थी; इसलिए उसे बाहर का कुछ ज़्यादा दिख नहीं रहा था और जो दीखता था वह वैसा नहीं था जो वह देखना चाहती थी। गाड़ी के सफ़र और उसकी रफ़्तार ने उसे यह समझाना शुरू कर दिया कि वह अपनी उम्मीदें क़ाबू में कर ले; उसे बहुत कुछ या सबकुछ बदला हुआ ही मिलने वाला है।

"बचपन का घर, मोहल्ला, दोस्त, नीचे की दुकानें, उसके दुकानदार, पड़ोसी, अपने खेल, अपनी ज़िन्दगी, और भी न जाने क्या क्या। इतने साल बीत जाने के बाद भी जैसे कि उसे सब बातें साफ़ और शांत पानी में दीखती परछाईं की तरह याद थीं। वक़्त का पानी लम्बा रास्ता तय कर चुका था लेकिन उसकी इन यादों को धो न पाया था"

यह गाड़ी उन स्टेशनों पर भी न रुकी जो उसे याद थे, जब कानपुर में गाड़ी रुकी तो उसकी धड़कनें तेज़ हो गईं और वह ख़ुद को समझाने लगी कि सब ठीक होगा, उसका फ़ैसला ग़लत साबित न होगा। उसके घरवाले अब नए इलाक़े गोमती नगर में रहने लगे थे। उसे याद आता था वह दिन जब उसके अब्बाजान बहुत फख्र से कहा करते थे लखनऊ तो गोमती के इस तरफ़ है उस तरफ़ तो बस उसकी छुटपुट बस्तियाँ हैं। वह भी ऐन कैसरबाग़ में रहना जो शहर का दिल हुआ करता था। घर पर उसके अब भैया-भाभी ही रहते थे, उनके बच्चे भी दूसरे शहरों और देशों में थे। दिल्ली से उसने अपने आने की इत्तिला तो भाईजान को दे दी थी पर कैसे और कब आ रही है, नहीं बताया था। वह अपने किसी भी अनुभव में कोई हस्तक्षेप नहीं चाहती थी, सबकुछ अपने दिल की नज़रों से देखना, अपनी बुद्धि से समझना चाहती थी। स्टेशन से घर जाने का रास्ता जो उसके दिमाग़ में था, टैक्सी बिलकुल दूसरे रास्ते से गई। उसने न ही सदर का रास्ता लिया, न ही गोमती का पुल पार किया, आलमबाग़ वग़ैरह होते हुए सीधे शहीदपथ पर चढ़ गई। वह सोचने लगी मैं यह कहाँ आ गयी हूँ; यह मेरा शहर तो नहीं, यह मेरा सपना तो नहीं। बहरहाल वह घर पहुँची। भैया, भाभी से मिलकर अपनी पुरानी ज़बान में बातकर उसके दिल पर जमी बर्फ़ को पिघलने की थोड़ी गर्मी मिली। बातों का सिलसिला जो शुरू हुआ तो वह आज से धीरे-धीरे पीछे की तरफ़ लौटने लगा। उसमें उसके विदेश जाने की बात भी आयी और उसके निकाह का ज़िक्र भी। उसे याद आया कि विदेश जाने का फ़ैसला उसका नहीं सलमान का था। किसी ने उसकी रज़ामंदी तक न पूछी थी, वक़्त और समाज के तक़ाज़े के आगे उसने चूँ तक न की थी। चार साल के समर और छह साल की सहर को लेकर वह चली गयी थी एक अनजान ज़िन्दगी में। धीरे-धीरे उसे इस बात की आदत हो गयी कि उसकी रज़ामंदी कोई मायने नहीं रखती। वह अपने बच्चों का पूरा ख़याल रखती, घर को सलीक़े से रखती। उसकी नीरस और ढर्रे की ज़िन्दगी को किताबें सुन्दर उपवन बनाए रहीं। पहले वह कहानियाँ, उपन्यास वग़ैरह पढ़ती रहती थी। लेकिन उसने निजी जीवन में सघन होते बवंडर को समय से पहले भाँप लिया था और हिंदी बतौर विदेशी भाषा सिखाने का प्रशिक्षण कर लिया था।

वह ख़याली दुनिया से वापिस लखनऊ भैया-भाभी के कमरे और उनकी संगत में लौटी। बात बचपन और क़ैसरबाग़ वाले घर की तरफ़ भी लौटी। उसे स्कूल और उन दिनों की बातें याद आ गईं। कोई रोक-टोक नहीं थी, उसके अम्मी-

अब्बा उसे पढ़ने और सबकुछ सीखने का हौसला ठीक वैसे ही देते थे जैसे उसके भाईजान को। उसे खुले ख़यालों की खुली हवा में उड़ने की पूरी आज़ादी होती थी, वह उस हवा में एक बार साँस और लेना चाहती थी। उसने अगली सुबह ही अपना पुराना घर और इलाक़ा देखने का फ़ैसला किया और वह भी अकेले। भैया ने उसे मेट्रो तक छोड़ा और वह मेट्रो में बैठकर नए लखनऊ के नज़ारे देखते हुए जा रही थी। नए लखनऊ से पुराना लखनऊ सतत झाँक रहा था। विश्वविद्यालय के आते ही अपने हिंदी विभाग की ईमारत तलाशने लगी। उसने अपनी स्मरण-शक्ति से विश्वविद्यालय के दालानों में ख़ुद को अपने साथियों के साथ मंद चाल चलते किसी विषय पर बात करते भी देख लिया। उसका सारा वक़्त हक़ीक़ी और ख़याली दुनिया के बीच सफ़र में गुज़र रहा था और उससे उसे अपनी उलझन से लड़ने की ताक़त मिल रही थी। वह केडी सिंह बाबू स्टेडियम मेट्रो स्टेशन पर उतर गयी और पैदल बेग़म हज़रतमहल पार्क, भातखण्डे, बाराहदरी होते हुए क़ैसरबाग़ चौराहे पर पहुँची, यही वह मुक़ाम था जहाँ पहुँचने के लिए उसके दिलो-दिमाग़ को बहुत उथल-पुथल से गुज़ारना पड़ा था, उसे इस सफ़र के लिए हिम्मत जुटानी पड़ी थी। जो जगह उसके लिए इतने मायने रखती थी और उसे बेइंतहा भव्य और ख़ूबसूरत लगा करती थी, वह मानो उसे आख़िरी साँसे गिनती और बुढ़ापे के कगार पर खड़ी, ख़ुद में ही सिमटती मिली। उसने आँखें बंद करके उसे उसके पुराने रुप में याद करने की बहुत कोशिश की लेकिन अभी-अभी लगे धक्के की तस्वीर बदलती ही नहीं थी। वह सोचने लगी क्या वह सब कुछ जो मेरा था इसी तरह सिकुड़ और सिमट गया होगा कि उसकी झलक तक न मिल पाएगी। चौराहे से अपनी गली, अपने घर तक जाते-जाते यह एहसास गहरा होता जाता था। उसे लगने लगा कि उसकी ज़िन्दगी मज़ाक़ बन कर रह गयी है। न उसके पास अतीत बचा है और न ही वर्तमान है; और जिसके पास ये दोनों नहीं होते भविष्य उसका क्या होगा। न कोई जगह वैसी बची थी, न ही कोई शख़्स उसे ऐसा मिला जिसे वह खोज रही थी, या जिसे वह जानती हो और वह उसको।

गाड़ियों का शोर, दुकानों पर ख़रीद-फ़रोख़्त ठीक वैसे ही हो रहे थे जैसे किसी भी शहर में होते हैं, फिर इसमें ऐसा क्या था जो उसका हो। वह चलती जा रही थी, दुकाने तो थीं, नाम अलग थे, मालिक अलग थे। फिर वह हाता आया जहाँ अज़ीम चाचा और भटनागर अंकल का घर हुआ करता था। वह उसमें दाख़िल हुई। सबसे पहले मिले पीपल का पेड़ और उसका चबूतरा; उनकी मौजूदगी ने ही उसे हिम्मत दी और यह भरोसा कि मौसम सही होने पर पेड़ों पर नए पत्ते आते ही हैं और पुराने अपने निशाँ चबूतरों पर छोड़ ही जाते है। कुछ पल वह चबूतरे पर बैठी रही पर उसे अपनेएहसासों की रूह वहाँ न मिल पाई। लेकिन फिर भी पीपल से मिली उम्मीद लेकर वह अज़ीम चाचा के घर की ओर बढ़ी। उनके नाम की पट्टी अभी भी घर पर लगी थी पर दरवाज़े को देख कर लगता था कि बरसों से नहीं खुला है। हर अगली घटना उसके मन के विश्वास और धैर्य को कम करती जा रही थी। बड़े बेमन से उसके क़दम भटनागर अंकल के घर की ओर बढ़े। उस घर पर पुरानी नाम-पट्टी

"फिर वह हाता आया जहाँ अज़ीम चाचा और भटनागर अंकल का घर हुआ करता था। वह उसमें दाख़िल हुई। सबसे पहले मिले पीपल का पेड़ और उसका चबूतरा; उनकी मौजूदगी ने ही उसे हिम्मत दी और यह भरोसा कि मौसम सही होने पर पेड़ों पर नए पत्ते आते ही हैं और पुराने अपने निशाँ चबूतरों पर छोड़ ही जाते है।..."

नहीं थी लेकिन घर आबाद था; यहाँ तक कि अंदर से आवाज़ें भी आ रही थीं। उसने अपनी हिम्मत बटोरी और घंटी बजा दी। एक बच्चे ने दरवाज़ा खोला, उसने उससे कहा कि अंदर जाकर कहिए अमरीका वाली साहिरा आयी हैं। बच्चे ने जब अंदर जाकर यह बात बताई तो वहाँ एकदम हलचल मच गयी। आपस में कुछ बातें होने लगीं और उसे कुछ क़दमों के दरवाज़े तक आने की आहट सुनायी देने लगी। सामने उसी की उम्र की एक महिला और पुरुष खड़े थे। दोनों की आँखों पर चश्मे थे पर उनसे झाँकती नज़रें उसे जानी-पहचानी लगीं।

उसने कहा, अमन भैया? आरती? दोनों ने उसी पल उसे अपने आग़ोश में ले लिया। और वहीं खड़े सैकड़ों सवाल पूछने लगे। अंदर से भर्राती हुई आवाज़ आई, वहीं खड़े रहकर बतियाते रहोगे या साहिरा बिटिया को अंदर भी आने दोगे?

साहिरा बोली, अरे! चाची भी भीतर हैं।

वह दौड़ती हुई भीतर भागी। घर का फर्नीचर, कमरों का रंग-रूप, चीज़ों की जगहें वग़ैरह बदल गयी थीं पर उस घर का नक़्शा मानो उसके दिमाग़ में एकदम ताज़ा था। भटनागर चाची उसे पुकारे जा रही थीं और वह उनकी आवाज़ की दिशा में उड़ी जा रही थी। चाची को देखकर पल भर को वह ठिठकी। चाची, जिनका बतौर कॉलेज प्रिंसिपल बड़ा रुतबा था, रौब जिनके साथ चला करता था और माथे की बड़ी बिंदी जिनकी पहचान होती थी, की जगह उसे एक बहुत ही दुबली-पतली सी काया दिखी।

चाची: वहीं खड़ी रहेगी या पास भी आएगी।

साहिरा ने उनके पैर छूने चाहे पर चाची की फैली बाँहों के बुलावे पर वह उनसे गले मिलने दौड़ पड़ी। चाची ने उसे ग़ौर से देखा, उसके गालों पर हाथ फेरा, बाल सराहे माथा चूमा और अपने बिलकुल बग़ल में बैठा लिया। चाची को साहिरा के बचपन की सब बातें याद थीं। अब्बाजान और अम्मी के साथ होने वाली महफ़िलें भी, उसके दोस्त, अहबाब भी, उसके शौक़ भी, उसकी पसंद भी। उन्होंने फ़ौरन लंच में उसकी पसंद की चीज़ें बनाने की हिदायत दी और जिमख़ाने वाली गली से कबाब मँगवा लिए। फिर उससे उसकी ज़िन्दगी के बारे में सवाल-जवाब करने लगीं।

चाची: बिटिया अकेली ही आयी हो, बच्चे नहीं आए? अरे उनका नाम एक बार फिर ज़रा याद दिलाना।

साहिरा: जी, चाची अकेली ही आयी हूँ। बिटिया का नाम सहर है और बेटे का समर।

चाची: कितने दिन लखनऊ रहोगी? हमारे यहाँ रहने कब आओगी? भैयाजान...

तभी दूसरे कमरे से आरती की आवाज़ आयी।

आरती: यह क्या साही, इतने दिनों बाद आयी हो

और मम्मी से ही चिपक कर बैठ गई। हमसे भी थोड़ा बतिया लो। हमें शाम को अपने घर नोएडा के लिए निकलना है।

चाची की बातों, उनकी यादों ने जैसे एक बोझ साहिरा के ऊपर से उतार दिया था। बरसों मशीन की तरह ज़िन्दगी बसर करने के बाद वह यह भूल गयी थी की उसका भी फिक्रमंद कोई हो सकता है, किसी को उसकी पसंद की परवाह हो सकती है, कि ज़िन्दगी ऐसी भी होती है। और आरती ने जब उसे साही कहकर पुकारा तो उसके संयम की बाड़ टूट गयी और आँखें जो अपना शग़ल भूल गयी थीं, झराझर बह पड़ीं। बरसों से दबे आँसुओं के आज़ाद होते ही साहिरा के क़दमों को नया विश्वास, मन को नई उड़ान और उसको उसकी पहचान मिल गयी। मशीनी और किराए की ज़िन्दगी ने उससे वह सब छीन लिया था जो उसका अपना था। पर स्नेहिल और सच्चे माहौल की हवा ने एक झोंके में उसे वह सब लौटा दिया और उसकी उसके वजूद से मुलाक़ात करा दी। इंसान होने का एहसास उसकी तरफ़ नर्म झोकों में आ रहा था और वह अपनी बाँहें खोल उसका स्वागत कर रही थी।

- प्रगति टिपणीस

हिम्मत शाह। स्रोतः पब्लिक डोमिन

पवनेन्द्र 'पवन'

गाँव समलोटी, जिला काँगड़ा(हि प्र) में जन्मे तथा वर्तमान में नगरौटा बगवाँ(काँगड़ा) के निवासी पवनेन्द्र 'पवन' जी राजकीय सेवा से मुख्याध्यापक व MET पब्लिक स्कूल (नगरोटा बगवाँ) से प्रधानाचार्य पद से सेवानिवृत हो कर स्वतंत्र लेखन कर रहें हैं। हिन्दी व पहाड़ी(हिमाचली)में कविता,ग़ज़ल,गीत,नाटक ,कहानियाँ विधा में सृजनरत पवनेन्द्र जी की 2 पुस्तकें प्रकाशित हैं। कई साहित्यिक संस्थाओं से सम्मानित हैं।

ईमेल - pawan1945gupta@gmail.com

ग़ज़लें

-पवनेन्द्र 'पवन'

1.

घूमती है दर-ब-दर लेकर पटारी ज़िन्दगी
पेट पापी के लिये बन कर मदारी ज़िन्दगी

गालियाँ कुछ को मिलीं कुछ ने बटोरी तालियाँ
वक़्त की पिच पर क्रिकेट की एक पारी ज़िन्दगी

दो क़दम चल कर ही थक कर हाँफने लगते हैं लोग
किसने इन पर लाद दी इनसे भी भारी ज़िन्दगी

वक्त का टी.टी. न जाने कब इसे चलता करे
बिन टिकट के रेल की जैसे सवारी ज़िन्दगी

झिड़कियाँ आदेश हर दम गालियाँ सुनती रहे
चौथे दर्ज़े की हो गोया कर्मचारी ज़िन्दगी

मौत तो जैसे 'पवन'मुफ़लिस की ठंडी काँगड़ी
बर रही दिन-रात दफ़तर की बुख़ारी ज़िन्दग

2.

सैंकड़ों ख़त आ गए हैं उस मेरे ख़त के खिलाफ़
जो लिखा मैंने वतन में फैली नफ़रत के ख़िलाफ़

अब नही होती है पूजा रब को पाने के लिये
अब तो होती है इबादत भी इबादत के ख़िलाफ़

दिल ने रद कर दी हैं यूँ सारी दलीलें ज़ेहन की
फ़ैसला दे अदालत ज्यों अदालत के ख़िलाफ़

दुश्मनों से भिड़ गया था जिसके उकसाने पे मैं
दोस्त है वो ही खड़ा मेरी ज़मानत के ख़िलाफ़

बेवफ़ाई का तेरी शिकवा नहीं कोई मुझे
मेरी किस्मत ही रही है मेरी हसरत के ख़िलाफ़

फिर कहाँ रह पाएगा कायम भला इसका वजूद
हो गई हों घर की दीवारें ही जब छत के ख़िलाफ़

वो झुका कर ही रहेंगे उसको जो झुकता नहीं
फ़ैसला इक आ गया है और पर्वत के ख़िलाफ़

3.

झरनों वनों पहाड़ों के मंज़र लपेट कर
लाया हूँ अपनी आँख के अन्दर लपेट कर

करता लहूलुहान है वो मार कर मुझे
मीठी ज़ुबाँ में तानों के ख़ंजर लपेट कर

नफ़रत की बाढ़ में हैं सभी बह रहे मगर
सोए पड़े हैं नाख़ुदा लंगर लपेट कर

बोते, उगाते, सींचते, थकते रहे किसान
फ़सलें तमाम ले गए बंदर लपेट कर

दिल से सकून आँखों से है नींद उड़ गई
जोगी वो जब से दे गया जंतर लपेट कर

इन्सानियत को रंगों में करते हो क़ैद क्यों
भगवे, हरे, सफ़ेद आडम्बर लपेट कर

चहका खुशी से चूज़ा यूँ पहली उड़ान भर
लाया परों में जैसे हो अम्बर लपेट कर

त्योहार, नाच, रंग सब अपने हैं उनसे ही
सरहद पे जो डटे रहें बंकर लपेट कर

मर गए हैं ख़्वाब सब,उगती नहीं है आस
तू दिल को ऐसा दे गया बंजर लपेट कर

दुनिया में अम्न ख़ुद ब ख़ुद हो जाएगा ‘पवन’
धर दें सभी जो अपने पयम्बर लपेट कर

4.

पुरखे बना गए जो पाई जोड़ कर
हमने बिछा दीं टाइलें वो फर्श तोड़ कर

लम्बों ने कद से दो गुनी ओढ़ी जो चादरें
सोना पड़ा है छोटों को टांगें सिकोड़ कर

सच्ची कमाई है कहाँ किसकी है पाप की
नानक दिखाओ रोटियाँ फिर से निचोड़ कर

छलनी हुए हैं किरचों से अपने ही हाथ पाँव
उकसाए उनके मैकदे के जाम तोड़ कर

है अम्न मैकदे में तो इस वास्ते कि रिंद
धर्म-आस्था को आएँ सब घर पर ही छोड़ कर

दो टीन जोड़ कर अभी बैठे ही थे ‘पवन’
भूकम्प ने गिरा दिया छप्पर झँझोड़ कर

5.

घुटे माहौल में आक्रोश भी मन का नहीं निकला
कि जैसे बोर-वेल में गिर के है बच्चा नहीं निकला

चरस, चिट्टा या गाँजा खूँखरी चाकू न हो जिसमें
भरी कक्षा में ऐसा एक भी बस्ता नहीं निकला

हरे पीपल को भी पूजो मगर चिन्ता हो उनकी भी
बहारों में भी जिन पेड़ों पे इक पत्ता नहीं निकला

वो दुश्मन दोस्त वेशक हो गया है फिर भी इस मन से
न जाने कब वो कर दे वार यह खटका नहीं निकला

चुभे काँटे बहुत लेते ही इसको हाथ में अपने
किया जो भेंट तूने, सिर्फ गुलदस्ता नहीं निकला

-पवनेन्द्र पवन

अनूप कुमार शुक्ल

कानपुर (उत्तर प्रदेश) में जन्में सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार अनूप कुमार शुक्ल हिन्दी ब्लॉगिंग में लगातार सक्रिय हैं । भारत सरकार के रक्षा मंत्रालय के अंतर्गत 'ट्रुप कम्फर्ट लिमिटेड, कानपुर' में महाप्रबंधक के रूप में कार्यरत। अब तक छह पुस्तकें प्रकाशित। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा 'सूरज की मिस्ड कॉल' पर सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' सम्मान एवं 'घुमक्कड़ी की दिहाड़ी' पर बाबू गुलाब राय सम्मान।

ईमेल - anupkidak@gmail.com

निकल्लिये घूमने अमरीका

-अनूप कुमार शुक्ल

"तापमान के इस अंतर को ऐसे समझ लीजिए कि जहाज के बाहर तापमान अगर गरीबी रेखा के नीचे है, तो अंदर का मामला उच्च वर्ग का। बहुत अंतर है दोनों के स्तर में। जहाज अपनी जो गर्म गैस छोड़ता होगा, उससे उसके आसपास की हवा कुछ गर्म हो जाती होगी जैसे अमीरों की संगत में रहने वाले लोगों का जीवन स्तर कुछ ठीक सा होता दिखता है।..."

आज लेह-लद्दाख के किस्से लिखते हुए एक पोस्ट में अपन ने लिखा था- 'मन करता है गुरु निकल्लें घूमने के लिए। जो होगा देखा जायेगा।' पोस्ट लिखने के बाद मन सही में कर गया। सो निकल्लिये अमरीका के लिए। अब जो होगा देखा जायेगा।

हमारे घर में सब बच्चे बारी-बारी से अमरीका टहल आये। सबसे पहले बिटिया स्वाती गयीं। ह्यूस्टन आदि जगहों पर रहीं। वहाँ के आँखों देखे किस्से सुनाये। इसके बाद बड़े सुपुत्र सौमित्र पहुँचे अमेरिका। मार्च 2011 में। उसकी यात्रा का भी बड़ा रोचक अनुभव रहा। अपने कालेज के एयरोमाडलिंग ग्रुप के दोस्तों के साथ गये। अपने ग्रुप फ़ाल्कन के जिस जहाज के मॉडल को अमेरिका के डलास में प्रदर्शनी के लिए ले जाना था वह तब पहुँचा जब प्रदर्शनी खत्म हो गयी थी। लेकिन उसके लिए और उसके दोस्तों के लिये वह यादगार यात्रा रही। उस दौरे का काफ़ी बड़ा योगदान है कि आज सौमित्र सैनफ़्रान्सिस्को में हैं।

बड़े भाई के बाद नम्बर लगा छोटे भाई अनन्य

का। पिछले साल गोल्डमैन सैक्स कम्पनी में ज्वाइन करने गये तो कम्पनी ने दो सप्ताह के लिये ट्रनिंग पर भेजा अमेरिका। हवाई जहाज से पैराशूट से उतरने का रोचक अनुभव रहा उनका।
घर में सब लोग जब घूम आये तो हमने सोचा हम भी टहल आयें। वीसा-फीसा बनवाकर निकल लिये आज हम भी। देश में तो घूमते-टहलते रहते ही हैं। थोड़ा विदेश भ्रमण भी हो जाये। सो हम मियां-बीबी निकल ही लिये।
हमारी इस यात्रा में जितना योगदान हम लोगों का है उससे कहीं ज्यादा योगदान हमारे बच्चों और उन कुछ मित्रों का भी है, जो हमको लगातार उकसाते रहे कि घूमने में देरी और कंजूसी करना ठीक नहीं। तो बिना देर किए हम चल ही दिए।
अभी यह पोस्ट हवाई अड्डे से ही जहाज के इंतजार में लिख रहे हैं। एयरइंडिया फ्लाइट में एक घण्टे की देरी के लिए माफी माँग चुकी है। हमारे पास माफ करने के सिवा और कोई चारा तो नहीं फिलहाल। आगे देखते हैं कितना और देर होगी।
कल शाम को न्यूयार्क पहुँचेंगे। वहाँ से न्यूजर्सी। हफ़्ते भर न्यूजर्सी रहेंगे। वहाँ बाद पोर्टलैंड होते हुए सैनफ्रांसिस्को जायेंगे। इतने दिन में जितना घूम पायेंगे, घूमेंगे अमरीका। बाकी का अमेरिका अगली बार देखने के लिये छोड़ आयेंगे। साथ मे लाद के लाना सम्भव भी नहीं। फ्लाइट में 25 किलो से ज्यादा लाने नहीं देंगे।
जो साथी हमारे लेह-लद्दाख के किस्सों से काम भर का बोर हो चुके हैं; इस यात्रा से उनकी शिकायत दूर करने का भी मौका मिलेगा। कुछ दिनों तक अमेरिका के किस्से सुनाये-दिखाये जायेंगे।

हमारे अमेरिका के न्यूयार्क, न्यूजर्सी, पोर्टलैंड, सैंनफ्रांसिस्को में रहने वाले दोस्त अगर मिल सकेंगे तो हम खुशी-खुशी मिलना चाहेंगे।
(अगले किस्से अब अमरीका से ही। ठीक !...)

रूस के ऊपर से गुजरते हुए-
इस समय रूस के ऊपर से गुजर रहे हैं। जमीन से बत्तीस हजार फुट ऊपर। मतलब दस किलोमीटर ऊपर। दस किलोमीटर मतलब कानपुर में रेलवे स्टेशन से अर्मापुर तक की सीधी सड़क को तानकर खड़ा कर दिया जाए तो जहाज की ऊँचाई तक पहुँच जाएगी।
है भाई... तापमान भी तो सुना जाए। बाहर का तापमान शून्य से 55 डिग्री नीचे है। मतलब सियाचिन के तापमान से भी कुछ और कम। अंदर का तापमान अलबत्ता 25 डिग्री के करीब होगा। मतलब अंदर और बाहर के तापमान में 80 डिग्री का अंतर है।
तापमान के इस अंतर को ऐसे समझ लीजिए कि जहाज के बाहर तापमान अगर गरीबी रेखा के नीचे है, तो अंदर का मामला उच्च वर्ग का। बहुत अंतर है दोनों के स्तर में। जहाज अपनी जो गर्म गैस छोड़ता होगा, उससे उसके आसपास की हवा कुछ गर्म हो जाती होगी जैसे अमीरों की संगत में रहने वाले लोगों का जीवन स्तर कुछ ठीक सा होता दिखता है।
दिल्ली से 5000 किलोमीटर निकल आये हैं। मतलब कश्मीर से कन्याकुमारी का लगभग डेढ़ गुना। अभी 7000 किलोमीटर और चलना है। जहाज 800 किलोमीटर प्रति घण्टा की रफ्तार से चल रहा है। मतलब हमारी साइकिल की सबसे तेज स्पीड 20 किमी/घण्टा से 40 गुना गति से।

"बाजार का जलवा है अमेरिका में। पूँजीपति सरकार बनवाते हैं। अमेरिका की नीतियों पर पूँजीपतियों के दबदबे की बात पर अपने एक व्यंग्य लेख में परसाई जी ने कुछ इस तरह लिखा है- "अमेरिका का कारपोरेट सड़क से किसी को पकड़कर खड़ा कर देता है और अमेरिकन जनता को बताता है देखो यह तुम्हारा राष्ट्रपति है।" "

रूस के ऊपर से गुजरते हुए सोच रहे हैं अगर साइकिल से होते तो कहीं टिकाकर दुकान पर चाय/काफी पीते। किसी से बतियाते। गपियाते। पुतिन जी का हाल-चाल लेते। लेकिन साइकिल साथ लाये ही नहीं तो क्या फायदा सोचने का।
मास्को में इस समय सुबह के साढ़े सात बजे हैं। सूरज भाई एक कोने से निकलते दिख रहे हैं। लेकिन मौसम शायद ठंडा है इसलिए किरणों, उजाले को साथ नहीं लाये हैं अभी। जब थोड़ा गुनगुना जाएगा मौसम तो लाएंगे कुनबे के लोगों को।
अमेरिका में मौसम के हिसाब से अलग-अलग टाइम जोन हैं। न्यूयार्क में इस समय रात के 11.43 बजे हैं तो सैनफ्रांसिस्को में 8.43 । तीन घण्टे का अंतर। पोर्टलैंड में पिछले हफ्ते ही दिन की रोशनी के हिसाब से समय बदला गया। जरूरत के हिसाब से वहाँ घड़ियाँ आगे-पीछे की जाती हैं। समय की कीमत का अंदाज है शायद उनको। हवाई जहाज का स्टाफ सबेरे का नाश्ता कराकर

वापस लौट गया है। हवाई जहाज की बत्तियाँ बुझ गयी हैं। यात्री या तो सो रहे हैं या फिर हमारी तरह मोबाइल में जुटे हैं। जहाज में चूँकि चार्जिंग की सुविधा है, इसलिए धड़ल्ले से पोस्ट टाइप कर रहे हैं। अभी नेट कनेक्शन है नहीं इसलिए अभी इसे सेव कर रहे हैं। न्यूयार्क पहुँचते ही पोस्ट कर देंगे। जहाज इस समय हेलसिंकी के बगल से गुजर रहा है।

(भारतीय समयानुसार सुबह 5 नवम्बर को 10 बजकर 13 मिनट पर लिखी पोस्ट पहुँचकर रात भारतीय समयानुसार रात 11 बजकर 42 मिनट पर पोस्ट की गई। इस समय न्यूजर्सी में दिन के एक बजकर 13 मिनट हुए हैं।)

अमेरिका के रास्ते से-

अमेरिका के बारे में किस्से-कहानी तो सुनते आए थे। कोलम्बस ने खोज की अमेरिका की। यूरोपियन अमेरिका आये। यहाँ के मूल निवासियों को निपटाकर कब्जा किया। छा गए यहाँ। आज विश्व के सबसे ताकतवर लोकतंत्र की हैसियत से दुनिया की दिशा-दशा और दुर्दशा भी तय करने में अहम भूमिका है अमेरिका की।

समानता, लोकतंत्र औऱ विश्वबन्धुत्व के पैरोकार अमेरिका के मूल निवासी यहाँ की आबादी का कुल 0.9 प्रतिशत बचे हैं। संख्या में कम होने के चलते उनकी वही स्थिति है, जो किसी लोकतंत्र में संख्या में बहुत कम वोट-बैंक वालों की होती है। चन्द्रभूषण जी अपने एक लेख में बताते हैं-

“आबादी के आँकड़ों पर नजर डालें तो अमेरिकन इंडियन समुदाय अपने शुद्ध नस्ली रूप में अमेरिका की कुल आबादी का मात्र 0.9 फीसदी है, जबकि इसमें मिश्रित नस्ल वाले अमेरिकन इंडियन भी शामिल कर लिए जाएँ तो उनका हिस्सा 1.6 फीसदी हो जाता है। उनकी ज्यादातर आबादी पहले दक्षिणी-पूर्वी अमेरिका में बसती थी, लेकिन पाँच सौ साल पहले यूरोपीय उपनिवेशवादियों ने अमेरिका पर अपना कब्जा जमाना शुरू किया तो या तो उन्हें घेरकर मार डाला, या उजाड़ कर ऐसे बंजर इलाकों में धकेल दिया, जहाँ उनका बड़ा हिस्सा भूख और बीमारियों का शिकार होकर मर गया।”

बाजार का जलवा है अमेरिका में। पूँजीपति सरकार बनवाते हैं। अमेरिका की नीतियों पर पूँजीपतियों के दबदबे की बात पर अपने एक व्यंग्य लेख में परसाई जी ने कुछ इस तरह लिखा है- “अमेरिका का कारपोरेट सड़क से किसी को पकड़कर खड़ा कर देता है और अमेरिकन जनता को बताता है देखो यह तुम्हारा राष्ट्रपति है।”

अमेरिका की दुनिया के कमज़ोर देशों पर बरजोरी की बात करते हुए एक और लेख में परसाई जी लिखते हैं-

“अमरीकी शासक हमले को सभ्यता का प्रसार कहते हैं, बम बरसते हैं तो मरने वाले सोचते हैं, सभ्यता बरस रही है”

इन बातों के अलावा अभिव्यक्ति की आजादी, मनचाहा जीवन जीने आजादी और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की मिसाल भी है अमेरिका। अनेक उलटबाँसियों के बावजूद एक ऐसा देश जहाँ आना और बसना लोगों की इच्छा में सुमार होता है। दुनियाभर के सबसे प्रतिभाशाली लोगों की तमन्ना अमेरिका में बसने की होती है। काबिलियत और मेहनत की इज्जत होती है यहाँ।

ब्लागिंग से जुड़ने के साथ अमेरिका के कई मित्रों से परिचय हुआ। अतुल अरोरा ने अपने ‘लाईफ

इन अ एच ओ वी लेन' के जरिये अपने अमेरिका के शुरुआती दिनों के किस्से लिखे। मन किया अपन भी घूम आएँ।

हमारे नामराशि अनूप भार्गव जी भी हमको कई बार बुलाते-बुलाते रह गए। संयोग कि इस बार जब हम उनके ही मोहल्ले 'न्यू जर्सी' में एक हफ्ते रुकने के प्लान से अमेरिका जा रहे हैं, तब वो जयपुर-दिल्ली-भोपाल की यात्रा पर भारत निकल लिए। अमेरिका भी लगता है एक समय में एक ही 'अनूप' को झेल सकता है।

बहरहाल पासपोर्ट तो पिछले साल ही बन गया था अपन दोनों का। बच्चा सौमित्र और भांजी अन्विता अपने मियां सौरभ के साथ पिछले कुछ सालों से यहाँ हैं, तो हम सोचे हम भी हो आएँ। लिहाजा वीजा फार्म भरा। वीजा में अमेरिका यात्रा की सम्भावित तिथि भरनी होती है। जुलाई में फार्म भरा तो तारीख भरी यात्रा की अक्टूबर की आखिरी वाली।

फार्म भर तो दिया लेकिन ग़लत भरा था। फिर ठीक किया भांजे अपूर्व ने। इंटरव्यू तय हुआ 18 अगस्त/19 अगस्त। लेकिन उस दौरान संस्थान में हड़ताल के चलते हमारा निर्माणी में रहना जरूरी हो गया। लिहाजा इंटरव्यू की तारीख बदली गईं । 23 सितम्बर को हाथ के निशान और फोटो और 15 अक्टूबर को इंटरव्यू।

इंटरव्यू के लिए जो तैयारी की वो हमने आज तक कभी पहले नहीं की। एक-एक कागज जमाकर फाइल में लगाये। सब में नाम की स्लिप लगाई। पासबुक अपडेट कराई। जीपीएफ की पर्ची ली। मतलब कोई कसर न छोड़ी। सम्भावित सवालों के जबाब तैयार किए।

वीजा फार्म में सोशल मीडिया के खातों के विवरण भी भराये गए थे। भरते समय हमने सोचा कहीं हमारा कोई लेख देखकर नाराज होकर वीजा मना न कर दें एम्बेसी वाले।

बहरहाल, पूरी तैयारी से 15 अक्टूबर को इंटरव्यू देने गए। एकाध सवाल पूछने के बाद वीजा स्वीकृत हो गया। हमें लगा यार यह तो कुछ हुआ ही नहीं। इतना आसानी से हो गया। फिर याद आया सम्वाद- 'समस्या हल हो जाने के बाद उनकी सरलता आश्चर्यजनक लगती है।'

15 को जब लौटकर घर आये तो अमेरिका जाने के बारे में मतविभाजन हो गया। एक घराने के हिसाब से अभी टिकट मँहगे हैं, जाड़ा पड़ रहा है न्यूयार्क में। इसलिए गर्मियों में चला जाएगा। लेकिन दूसरे घराने के लोगों का कहना था कि टिकट मँहगा हो तो भी जाना चाहिए। आखिर पैसा किस दिन के लिए बचाते हैं लोग। अभी नहीं तो कभी नहीं।

रात में दोनों घरानों के दबावों के बीच झूलते हुए टिकट देखने बैठे। सबेरे जो सबसे सस्ता टिकट 81 हजार का मिल रहा था वह रात को 88 हजार हो गया था। कुछ देर बाद वही टिकट 91 हजार हो गया। हमें लगा कि इस 'गोले' में साजिश हो रही है हमारे खिलाफ हमें अमेरिका जाने से रोकने के लिए।

जैसे ही हमको यह एहसास हुआ कि हमारे खिलाफ साजिश हो रही है, हमारा इरादा और पक्का हो गया। इरादों में अम्बुजा सीमेंट छिड़ककर हमने आगे पीछे की तारीख भी देखी। दिखा एक फ्लाइट की टिकट 67 हजार (आने-जाने दोनों) की मिल रही है। हमने फौरन दो टिकट लपक ली। इस तरह हमारा जाना तय हुआ।

अब टिकट के बाद मामला फँसा विभाग से

अनापत्ति प्रमाणपत्र का। सरकारी कर्मचारी होने के नाते बिना विभाग से अनुमति लिए हम विदेश जा ही नहीं सकते। हम आश्वत थे कि हमको तो अनुमति मिल ही जानी है। लेकिन हमारे यहाँ बताता गया कि पैसे तो हैं ही नहीं हमारे खाते में। जाओगे कैसे, अमेरिका में खाओगे क्या। हमने बहुत बताया कि भाई टिकट हम ले चुके हैं, वहाँ हमारा बच्चा है। हमारे जीपीएफ में पैसे हैं, क्रेडिट कार्ड है। लेकिन बात बनी नहीं।

अंततः अनुमति श्रीमती जी की इस अंडरटेकिंग पर मिली कि हमारे घूमने का खर्च वही उठाएँगी। उनके खाते में पैसा था इसलिए उनकी बात मानकर हमें विदेश यात्रा की अनुमति मिल गयी। पैसे वाले की बात हर जगह मान ली जाती है।

हमारे बाद श्रीमती जी का अनापत्ति प्रमाणपत्र फँस गया। हम खुद लेने गए उसे इलाहाबाद। सुबह ढाई बजे निकले, रात वापस आये साढ़े ग्यारह। समझ लिया जाए कित्ती मेहनत पड़ती है अमेरिका जाने में।

इस बीच हमारा वीजा अपूर्व ने कलेक्ट कर लिया था। मतलब सब कागजी कार्यवाही हो गयी थी अमेरिका यात्रा की। अब न जाने की कोई गुंजाइश या बहाना बचा नहीं था।

कागजी कार्यवाही के बाद यात्रा की तैयारी में जुटे। गर्म कपड़े खरीदे गए। सब सामान जमाया गया। तैयारी चली ट्रेन आने के पहले तक। ट्रेन से नोएडा आये। नोएडा पहुँचते ही आँख दर्द, सर दर्द, कमरदर्द, बुखार भी आ गया। हम सोचे शायद फिर खिलाफ पार्टी का पलड़ा भारी हो गयी। विरोधियों का परचम पहरा गया। लगा कि डेंगू की चपेट में आ गए। हमको डर डेंगू से नहीं था। डेंगू से तो दवाई खाकर निपट लेंगे। डर इस बात का कि कहीं अमेरिका जाकर न पता चले कि बीमारी भी लाये हैं, सामान के साथ। इसके बाद सब मिलकर हड़काएँ कि हेल्थ बीमा कराने का मतलब यह थोड़ी कि बीमार होकर ही आएँ। लिहाजा डाक्टर की राय लेने पहुँचे। डॉक्टर बोलिस- 'डेंगू के लक्षण नहीं हैं। आराम करो। पैरासिटामॉल खाओ। ठीक हो जाओ।'

डाक्टर की बात मानकर हमने हचककर आराम फरमाया। सुबह तबियत एकदम झक्कास। दिन भर फिर अंगड़ाइयाँ लेते हुए आराम फरमाया। रात को निकल लिए एयरपोर्ट।

एयरपोर्ट पहुँचकर चेकइन कराया। फिर याद आया कि कुछ डॉलर और डाल लें पास में। लिहाजा पास में जितने पैसे थे उन सबको डॉलर में बदलवा लिया। इम्मीग्रेशन से गुज़रते हुए, सिक्योरिटी चेक कराया। टाइम पर आकर राजा बाबू की तरह जहाज का इंतजार किया। जहाज एक घण्टा देरी से आया। डेढ़ घण्टा देर चला। लेकिन हमने किसी बात का कोई बुरा नहीं माना। अच्छे बच्चों की तरह अपनी सीट पर आकर बैठ गए। चल दिये अमेरिका की ओर।

इस समय भारत में सवा बारह बजे हैं। 6987 किमी की यात्रा हो चुकी है। 5102 किमी बाकी है। कुल मिलाकर 12089 किमी की यात्रा है। मतलब घर से निर्माणी अगर 4 किमी धर लें और साल के 300 कार्यदिवस तो पाँच साल लगातार घर से फैक्ट्री आने-जाने की दूरी के बराबर है दिल्ली से अमेरिका।

फिलहाल जहाज हेलसिंकी, बर्लिन, एम्स्टर्डम के बगल वाले इलाके के ऊपर से होते हुये अटलांटिक महासागर के ऊपर उड़ रहा है। बर्लिन में इस समय सुबह के आठ बज रहे हैं। लेकिन बाहर घुप्प अँधेरा है। एकदम ब्लैकआउट सा। लगता है यहां की बिजली व्यवस्था भी किसी खटारा कम्पनी के हाथ है।

यह भी हो सकता है कि जो जगह हमको एकदम पास दिख रही हो वह दूर हो। हम बर्लिन को एकदम पास देख रहे हों लेकिन वह जगह वहां से दूर हो और वहाँ अभी सुबह हुई ही न हो।

किसी के बारे में बिना जाने सिर्फ अनुमान के सहारे राय बनाना ठीक नहीं।

जहाज का रास्ता ऐसे दिख रहा है जैसे दिल्ली से फेंका गया कोई पिंड पैराबोला पथ पर चला जा रहा हो। सीधे न्यूयार्क में ही लैंड करेगा। अभी करीब छह घण्टे की दूरी पर 'स्टेच्यू आफ लिबर्टी' और एम्पायर एस्टेट वाला न्यूयार्क ।

न्यूयार्क पहुँचने का इंतजार है हमको। न्यूयार्क भी पक्का हमारा इंतजार कर होगा। दोनों इंतजार एक साथ ही पूरे होंगे।

(रास्ते से लिखी गयी पोस्ट न्यूयार्क के बाद न्यूजर्सी पहुँचकर न्यूजर्सी के समय के हिसाब से 5 नवम्बर को दोपहर बाद 2 बजकर 58 मिनट पर पोस्ट की जा रही। भारत में इस समय 6 नवम्बर के सुबह के एक बजकर 30 मिनट हुए हैं)

उतरना न्यूयार्क हवाई अड्डे पर-

आज (कल) सुबह उतर गए अमरीका। दो घण्टे देरी से चले दिल्ली से। दो घण्टे लेट पहुँचे अमरीका। उतरते हुए एयरपोर्ट भारतीय एयरपोर्ट जैसा ही दिखा। वैसी ही सड़कें, वैसी ही घास। कुछ बहुत नहीं दिखा खास।

हम टर्मिनल 4 पर उतरे। पता चला इस तरह के आठ टरमिनल हैं न्यूयार्क में। एयरइंडिया की उड़ान ज्यादातर इसी टर्मिनल पर आती है।

उतरे तो पहुँचे इम्मीग्रेशन के लिए। अमरीका आ तो गए लेकिन अंदर घुसने की अनुमति के लिए इम्मीग्रेशन से निकलना जरूरी। कितने तो किस्से सुने थे कि शाहरुख खान को रोक लिया, कलाम साहब के जूते उतरवा लिए। किसी को

रोक लिया, किसी को एयरपोर्ट से लौटा दिया। हमको भी लगा कहीं हमारे साथ भी ऐसा न हो जाये। अमेरिका घूमने की बजाय कहीं हम भी प्रमुख समाचार न होकर रह जाएं।

पहुँचकर पासपोर्ट मशीन में घुसाकर इन्ट्री कराई। कुछ सवाल पूछे कम्प्यूटर ने। हमने टाइप करके जबाब भरे। फ़ोटो खिंचाने के लिए कहा तो हम बैठ गए मशीन के सामने। फोटो आई तो थोबड़ा आधा कट गया था। लेकिन जो भरा उसका प्रिंट आउट ठीक आया था।

हमारे बाद श्रीमती जी का भी भरा पर्चा हमने। कहीं अटके तो वहाँ मौजूद कर्मचारी ने भरकर निकाल दी पर्ची। पर्ची निकालने के बाद लाइन में लग गए। हर वीजा के यात्री का पाँच मिनट करीब इंटरव्यू हो रहा था। हमसे पहले दो लोगों को कुछ और पूछताछ के लिए दूसरा अधिकारी ले गया।

हमारा नम्बर आया तो हमसे भी पूछताछ हुई। हमने बताया। किसलिए आये, कहाँ जाना आदि बताया। बेटों के बारे में बताया तो ख़ुशी जाहिर की पुलिस अधिकारी ने कि बढ़िया जगह काम करते हैं। फिर अपनी बिटिया के बारे में बताया कि वह छह साल की है और कहती है कि उसको डाक्टर, इंजीनियर, वकील नहीं बनना है। उसको तो केवल एक्टर बनना है।

हमने भी खुशी जाहिर कर दी बिटिया के लिए कि बढ़िया है बिटिया अपनी मर्जी से सफल हो। खुशी जाहिर करने और तारीफ में न देरी ठीक न उधारी।

इम्मीग्रेशन में न कोई सामान चेक किया गया, न कोई जूते, कपड़े देखे गए। अमेरिकन इम्मीग्रेशन के बारे में फालतू का हल्ला दिमाग में भरा था, वह वहां से निकलते ही निकाल दिया।

5 नवम्बर को पहुँचे अमेरिका। पासपोर्ट में लिखा गया आये 5 नवम्बर, 2019 को। रहने की मियाद 4 मई, 2020 तक। लेकिन हमको तो पहले ही निकल जाना है।

बाहर निकल कर सामान समेटा। ट्राली लेने के लिये बढ़े आगे तो देखा कि सामान लादने के लिए ट्राली का का किराया 6 डॉलर। 6 डॉलर मतलब 430 रुपये करीब। हमने कहा अरे छोड़ो। ट्राली के 6 डॉलर देने लगे तो हो चुकी घुमाई। हमने बैग लादा पीठ पर। दो बैग थामे श्रीमती जी ने। इसके बाद दोनों बड़ी अटैची रोलर पर लुढ़काते हुए बाहर आ गए।

बचाया हुआ पैसा कमाए हुए पैसे के बराबर होता है अगर इस कहावत को सही माना जाए तो अमेरिका में घुसते ही हमने 6 डॉलर कमा लिए। वैसे अगर इस लिहाज से देखा जाए तो अपन ने 25 डॉलर भी बचाये। वह इस लिहाज से कि वहाँ सामान बाहर तक पहुँचाने के लिए कुली की भी व्यवस्था थी, 25 डॉलर में। लेकिन हमारे सामने उस सुविधा का उपयोग करते कोई दिखा नहीं। वहाँ कुली भी एक ही मौजूद था। बाहर सौरभ हमारा इंतजार कर रहे थे। हम उनकी गाड़ी में बैठकर चल दिए न्यूजर्सी की ओर।

(पोस्ट लिखी गयी न्यूजर्सी के समय के हिसाब से 6 नवम्बर को सुबह 0052 बजे। भारतीय समय के हिसाब से सुबह के 11 बजकर 22 मिनट पर)

-(शेष अगले अंक में)

-अनूप कुमार शुक्ल

साहित्यिक विरासत से

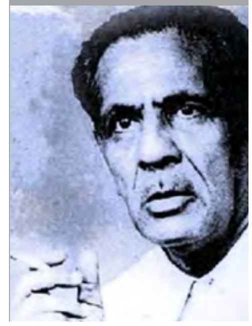

रघुपति सहाय (28 अगस्त 1896 - 3 मार्च 1982), जिन्हें उनके उपनाम फ़िराक गोरखपुरी के नाम से भी जाना जाता है, एक भारतीय लेखक, आलोचक और, एक टिप्पणीकार के अनुसार, भारत के सबसे प्रसिद्ध समकालीन उर्दू कवियों में से एक थे।उन्होंने ख़ुद को मुहम्मद इक़बाल, यगाना चंगेज़ी, जिगर मोरादाबादी और जोश मलीहाबादी सहित साथियों के बीच स्थापित किया।

मैं और मेरी शायरी

-रघुपति सहाय 'फ़िराक़' (फ़िराक़ गोरखपुरी)

"जहाँ मैं सोता था उस बरामदे के सामने दूर तक मैदान थे, खेत थे, और बड़े-बड़े पुराने पेड़ थे। इन सब पर रात का पर्दा गिर पड़ता था तो रात की रहस्य-मयता में मैं डूब जाता था। रात का अन्धकार और उस अंधकार की गहराई, तारों की झिलमिलाहट, रात के धुँधलके में स्थूल वस्तुओं की अपनी परछाई ये सब दृश्य मुझ पर छा जाते थे और मुझे एक विचित्र दशा में डाल देते थे..।"

मैं 28 अगस्त 1896 ई० को गोरखपुर में पैदा हुआ था। मेरे पिता थे बाबू गोरख प्रसाद जो उस समय से लेकर 1918 तक, जब उनकी मृत्यु हुई, गोरखपुर और आस-पास के जिलों के सबसे बड़े वकीले- दीवानी थे। मैं कई लिहाज से एक असाधारण बालक था । घर और घर वालों से असाधारण हद तक गहरा और प्रबल प्रेम था। सहपाठियों और साथियों से भी ऐसा ही प्रेम था। मुहल्ले, टोले के लोगों से अधिक से अधिक लगाव था। मैं इस लगाव, प्रेम की तीव्रता, गहराई, प्रबलता और लगभग मुझे हिला देने वाले तूफानों को जन्म भर भूल नहीं सका। इतना ही नहीं, घर की हर वस्तु, बिस्तर, घड़े, दूसरे सामान, कमरे, बरामदे, खिड़कियाँ, दरवाजे, दीवारों, खपरैल मेरे कलेजे के टुकड़े बन गये थे। मुहल्ले की गलियाँ, मुहल्ले वालों के घर, पेड़ और चबूतरे सभी मेरे खून, मेरी नाड़ी, मेरे दिल की धड़कन बन गये थे। तरकारियों और फसलों में दिये जाने वाला पानी, जीव-जन्तुओं का अपने बच्चों को दूध पिलाना, चिड़ियों के चहचहे और उनकी उड़ान, लोगों के दुख-सुख की कहानी मुझे आनन्दित या दुखी करके जड़ से हिला कर रख देती थी। लोकगीत, तुलसीकृत रामायण के पाठ, सूर और मीरा के पद और दूसरे गीत नश्तर की तरह मेरे दिल में उतर

जाते थे। माँ-बाप, अध्यापकों और साथियों से मैं कुछ नहीं कहता था, मन ही मन मैं सभी बातों से तड़प-तड़प कर रह जाता था।

रात को जब सोता था, तो नींद जरा देर से आती थी। जहाँ मैं सोता था उस बरामदे के सामने दूर तक मैदान थे, खेत थे, और बड़े-बड़े पुराने पेड़ थे। इन सब पर रात का पर्दा गिर पड़ता था तो रात की रहस्य- मयता में मैं डूब जाता था। रात का अन्धकार और उस अंधकार की गहराई, तारों की झिलमिलाहट, रात के धुँधलके में स्थूल वस्तुओं की अपनी परछाई ये सब दृश्य मुझ पर छा जाते थे और मुझे एक विचित्र दशा में डाल देते थे।

मौसमों का जुलूस मुझे बहुत प्रभावित करता था। बरसात, जाड़ा और तपती हुई गरमी, सूर्योदय और सूर्यास्त, मुझे एक प्रभाव- शाली मानवीय नाटक की तरह प्रभावित करते थे। मैं पेडों में भी किसी प्राणी के धड़कते हुए दिल का अनुभव करता था। लहलहाते हुये खेतों में मैं फसलों की नहीं, जीवन की लहलहाहट और लहर देखता था। जिन दृश्यों से मैं गुजरता था उन्हें छाती से लगा लेने को जी चाहता था। इन तमाम बातों को लड़कपन बीतने के पचास बरसों के बाद अपनी एक कविता 'हिंडोला' में मैंने व्यक्त कर दिया है।

जब मैं लगभग 9-10 बरस का हो गया तो मुझे स्कूल में दाखिल कर दिया गया। स्कूल में भी और घर पर भी पढ़ाने को मुझे सौभाग्य से बहुत योग्य अध्यापक मिले। बचपन में पढ़ी जाने वाली किताबों में ही जहाँ-जहाँ शैली और भाषा का रचाव या सौन्दर्य था, वह रचाव और सौन्दर्य मेरे दिल में डूब जाता था। आवाज की पहचान और परख मुझमें बचपन से थी। मातृभाषा की शिक्षा ने खड़ी बोली का रूप धारण कर लिया था और खड़ी बोली का प्रचलित, स्वाभाविक, सर्वव्यवहृत, सबसे उन्नत और विकसित रूप उर्दू था। मुझे हिन्दी भी पढ़ाई गई थी उर्दू के साथ ही साथ। लेकिन हिन्दी खड़ी बोली के रूप में मुझे उर्दू से कम जानदार और कम रची, कम स्वाभाविक और बिल्कुल अप्रचलित नजर आयी। ये बातें तो मेरे लड़कपन की हैं। पचासों बरस बाद मुझे यह अनुभव हुआ कि स्वभावगत खड़ी बोली के उर्दू रूप में यानी उसके स्वाभाविक गद्य में वे खटके हैं, वे तार-सम हैं, वे खनक हैं, जो आप से आप उर्दू कविता के शब्द-क्रमों और छन्दों के साँचों में ढल जाते हैं। अभ्यस्त और सिद्धहस्त हाथों में ये खटके और ये तार-सम एक रवानी पैदा कर देते हैं, एक गति और बहाव पैदा कर देते हैं जिसे 'बन्दिश की चुस्ती' कहते हैं और जो उर्दू की लाखों पंक्तियों को सुनते ही जबान पर चढ़ा देती है।...

गोरखपुर से हाई स्कूल पास किया। मैंने और दूसरों ने पिताजी को यह राय दी कि मुझे प्रान्त के सब से सुप्रसिद्ध विद्यालय स्योर सेंट्रल कालेज, इलाहाबाद में दाखिल कर दिया जाये। ऐसा ही हुआ और रहने के लिये मैंने हिन्दू बोर्डिंग हाउस पसंद किया, जो आज महामना पं० मदन मोहन मालवीय कालेज कहा जाता है। मैं उम्र के 17वें साल में था। जहाँ तक अंग्रेजी भाषा का सम्बन्ध है, मेरी शिक्षा की नीव की ईंटें ऐसी ठीक और जँची-तुली रखी गई थीं कि छठे दर्जे से अब तक मुझे याद है कि मैंने अंग्रेजी लिखने में व्याकरण या शब्द प्रयोग को कोई गलती नहीं की । इस हद तक तो मुझे अंग्रेजी भाषा आ ही गयी थी। कालेज में आकर लाजिक (न्यायशास्त्र), इतिहास और अंग्रेजी साहित्य के गद्य-पद्य की ऐसी किताबें पढ़ने को मिलीं जिनसे मेरे अंग्रेजी

ज्ञान को असाधारण बढ़ावा मिला और मैं अंग्रेजी में निबन्ध इत्यादि लिखने का अभ्यास अपने अन्दर पैदा करने लगा। अभी उर्दू शायरी मैं केवल पढ़ता ही था, उर्दू में शायरी करता नहीं था। अभी मैं एफ० ए० में ही था कि मेरे पिता जी को, परिवार को और मुझे धोखा देकर मेरा ब्याह करा दिया गया। यह ब्याह मेरे जीवन की एक मात्र दुःखान्त और विनाशकारी दुर्घटना साबित हुआ।

इस दुर्घटना के बाद से ही मेरे शरीर मेरे दिल मेरे दिमाग मेरी आत्मा में विनाशकारी भूकम्प, ज्वालामुखियों का फटना, घृणा और क्रोध के तूफान उठते रहे हैं। इनका मुकाबला करते हुए, विषपान करते हुए और नफरत के अग्निकुण्ड में जलते हुए, मैं अब तक जीता रहा हूँ। मैं अपने लिये वही चाहता था, जो हिन्दू शास्त्रों में एक सन्तोष जनक जीवन के सम्बन्ध में कहा गया है- यानी एक ऐसी अर्धांगिनी, जिसे मैं पसन्द कर सकूँ और प्यार कर सकूँ और जो मुझे भी अपना प्यार दे सके और ऐसी ही सन्तान भी मैं चाहता था। अपनी सन्तान को यह जानते हुए भी कि वह मेरी सन्तान है, मैं अपनी सन्तान मान नहीं सका। सफल और संतोषजनक घरेलू जीवन से बढ़कर मैं किसी और अवस्था को समझ नहीं सकता था और न मान सकता था। मेरी उजड़ी जिन्दगी और विषम जीवन की सफलता, विद्या प्राप्ति जीवन के किसी क्षेत्र में ख्याति, उसका बदला नहीं हो सकती । फिर भी मैंने इसका प्रयास किया और करता रहा हूँ कि अपने वास्तविक जीवन हू से साहित्य, दर्शन, मानव कल्याण और समाज की उन्नति में जेहनी तौर पर दिलचस्पी लेता रहूँ। बचपन में ही जो गम्भीरता मेरी अर्धचेतना में आ चेतना में आ चुकी थी, वही जीवन की न टाली जाने वाली मुसीबतों में आगे आयी। मैं अध्ययन और मनन के दरवाजे से अपनी गला घोटने वाली जिन्दगी को छोड़कर भागने की कोशिश करता रहा हूँ। मैं अपनी कविता को जिसे असाधारण लोकप्रियता मिल चुकी है, पंकज यानी कमल का वह फूल समझ रहा हूँ, जिसकी जड़ें कीचड़ में हों।

ब्याह होने के बाद पूरे साल भर मुझे नींद न आयी। न दिन को, न रात को। मैं हैरत में रहता हूँ कि मैं पागल क्यों नहीं हो गया या मर क्यों नहीं गया। लेकिन मुझको अपने नरकवत् जीवन का बड़ा मंहगा दाम देना पड़ा । बी० ए० में मुझे संग्रहणी का असाध्य रोग हो गया, जिससे वैद्यराज स्व० श्री त्रयम्बक शास्त्री ने मुझे बचाया। एक साल बी० ए० में पढ़ना छोड़ देना पड़ा। मुझे बहुत से लोग एक हँसमुख और जिन्दादिल आदमी समझते हैं। मेरी जिन्दादिली वह चादर है, वह परदा हैं, जिसे मैं अपने दारुण जीवन पर डाले रहता हूँ। ब्याह को छप्पन बरस हो चुके और इस लम्बे अरसे में एक दिन भी ऐसा नहीं बीता कि मैं दाँत पीस-पीस कर न रह गया हूँ। मेरे सुख ही नहीं, मेरे दुख भी मेरे ब्याह ने मुझ से छीन लिये। पिता-माता, भाइयों- बहनों, दोस्तों किसी की मौत पर मैं रो नहीं सका।

मैं पापिन ऐसी जली कोयला भई न राख।

अध्ययन और मनन-चिन्तन ने मुझे दुख मुक्त तो नहीं कर दिया, लेकिन कुछ सँभाले जरूर रखा। बी० ए० पास करने के पहले ही मेरे पूज्य पिताजी की मृत्यु हो चुकी थी, लेकिन बी० ए० के नतीजे में मैं पूरे सूबे में चौथे नम्बर पर पास हुआ था और मुझे डिप्टी कलक्टरी और आई०सी०एस० के लिए चुन लिया गया था लेकिन घरेलू जीवन

इतना उजाड़ हो चुका था कि मैंने उसे और उजाड़ बनाने में ही अपना कुशल समझा। सब बड़े ओहदों और पदों से इस्तीफा देकर मैं 1920 ई० में स्वराज्य आन्दोलन में कूद पड़ा और डेढ़ बरस के लिये जेल भी भुगता। जेल से छूट कर जब आया तो पं० जवाहरलाल नेहरु ने मुझे अखिल भारतीय कांग्रेस के दफ्तर में 'अण्डर सेक्रेटरी' की जगह दिला दी। सेक्रेटरी वो स्वयं थे। इस तरह कई बरस बीत गये। अपना दुःख तो बयान ही कर चुका हूँ। घर बिल्कुल वे रुपये-पैसे का हो चुका था। कुछ जायदाद जरूर बच गयी थी। मैं खुद बता नहीं सकता कि इस दस-बारह बरस के अरसे में मैंने अपना और एक अनाथ परिवार का पालन-पोषण कैसे किया। खैर जो गुजरना था गुजर गया। जब पं० जवाहरलाल नेहरु योरप चले गये तो मैं भी कांग्रेस के अण्डर सेक्रेटरी के पद से अलग हो गया और कुछ कालेजों में अध्यापक की हैसियत से दो-तीन साल काम करता रहा और उसी हैसियत से प्राइवेट तौर पर आगरा विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी और प्रथम स्थान में एम० ए० पास किया। एम० ए० का नतीजा निकलते ही मेरी मातृ-संस्था इलाहाबाद यूनिवर्सिटी ने मुझे अंग्रेजी का अध्यापक बे-अर्जी दिये नियुक्त कर दिया। बी० ए० करने के 12 बरस बाद दर-बदर की ठोकरें खाकर मुझे यह स्थान मिला। यहाँ थोड़ा-बहुत आर्थिक चिन्ताओं से छुटकारा मिला। तमाम परेशानियों के होते हुए अध्ययन, चिन्तन और विवेक का सिलसिला जारी रहा। मैं किताबों का कीड़ा कभी नहीं रहा। जितना पढ़ता था, उससे कई गुना ज्यादा सोचता- विचारता था।

यूनिवर्सिटी में अध्यापक का पद ग्रहण करने के बाद मुझे चुनी हुई किताबों के अध्ययन, जीवन और जीवन की समस्याओं पर मनन- चिन्तन, अपने मानसिक जीवन की पृष्ठभूमि को भरपूर बनाने, अपनी रचना और लेखन शैली को क्रमशः अधिक विकसित करने का अवसर मिलने लगा। अंग्रेजी साहित्य और विश्व साहित्य के पठन-पाठन से मेरी लेखन शैली में प्रौढ़ता आती गयी। मुझे उर्दू कविता को अधिक रचाने और सँवारने के मौके हाथ आने लगे। यूं तो युनिवर्सिटी अध्यापक का पद ग्रहण करने से तेरह-चौदह बरस पहले ही उर्दू काव्य रचना का अभ्यास प्राप्त करना मैंने शुरु कर दिया था। यहाँ एक महत्वपूर्ण तात्विक सत्य को बता देना आवश्यक समझता हूँ । मुझे उर्दू काव्य साहित्य में, और गद्य साहित्य में भी, अच्छी से अच्छी और सुन्दर से सुन्दर, ऊँची से ऊँची चीजें मिल चुकी थीं और मिलती रहती थीं । इन बातों के होते हुये भी मुझे मजमूई हैसियत से एक असन्तोष का आभास होता रहता था। शायद इस कारण से कि मेरे अन्दर हिन्दू विचारों और हिन्दू संस्कृति की गहरी से गहरी, बहुमूल्य से बहुमूल्य सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ विद्यमान थीं जो उर्दू कविता में कम ही मिलती थीं।

हिन्दू संस्कृति का मिज़ाज और उस मिजाज की ध्वनि, उर्दू कविता में कदाचित ही मिलती थी। अलबत्ता खड़ी बोली की शैली, उर्दू कविता में बहुत रचे हुये ढंग से और रंगारंग तरीकों से उपलब्ध थी।

जीवन का काव्यात्मक और कलात्मक अनुभव प्राप्त करना और दूसरों तक इस अनुभव को पहुँचाना साहित्य का एक मात्र लक्ष्य है। हिन्दू संस्कृति और इस संस्कृति के मिज़ाज ने मुझे यह अनुभव कराया कि प्रेमी प्रेमिका का सम्बन्ध, घरेलू

जीवन, सामाजिक जीवन, प्रकृति के दृश्य, धरती' नदियां, सागर, पहाड़, लहलहाते खेत, बाग और जंगल, अग्नि, हवा, सूर्य, चन्द्रमा, सितारे, मौसमों का जुलूस- किसी भी ईश्वर- पैगम्बर, धार्मिक ग्रंथ, काबा या काशी से कहीं अधिक दिव्य और पवित्र उत्तर प्रदेश हैं। भौतिकता के चमत्कार के अनुभव को ही मैं उच्च से उच्च आध्यात्मिकता महसूस करता था। जिसे हम भौतिक कहते हैं वही दिव्य भी है और उसके अतिरिक्त कोई विचार दिव्य नहीं है। लेकिन जिस ठंडे रूप से मैं से मैं यह बातें कह रहा हूँ अगर यही बातें इसी ढंग से मैं कविता में कहता, तो मुझे संतोष न होता । मैं जिन विषयों पर काव्य- रचना करना चाहता था- स्वर, ध्वनि और संकेत के सहारे उन्हें काव्यात्मक और कलात्मक बनाकर दिव्य भी बनाता था। साथ ही साथ ठेठ मानवता का लबो लहजा भी अपनी कविता में मुझे पैदा करना था । कविता में बातें कहनी पड़तीं लेकिन यह भी देखना और करना होता कि-

बात पहुँचती है कहाँ से कहाँ

ऐसा करने ही से सत्य अधिक से अधिक परिचित होता है और अधिक रहस्यमय और संगीतमय बन जाता है। मुझे उस जमीन को, संगीतमय बन जाता है । मुझे उस जमीन को, जिसे उर्दू के बड़े-बड़े कवियों ने अपने कलेजे के खून से सींच कर तैयार किया था, फिर से तोड़ना और जोतना था । अपनी कविता की शैली को मुझे एक सहज सुझाव देना था, उसके साथ ही साथ उसे मानवता और दिव्यता प्रदान करना था। जिन विषयों को मुझे वाणी देनी थी, वे अनित्य होते हुये भी अमृतपान कर चुके हैं और अमरत्व प्राप्त कर चुके हैं। दिव्यता, भौतिकता से पृथक वस्तु

"जेल से छूट कर जब आया तो पं0 जवाहरलाल नेहरू ने मुझे अखिल भारतीय कांग्रेस के दफ्तर में 'अण्डर सेक्रेटरी' की जगह दिला दी। सेक्रेटरी वो स्वयं थे। इस तरह कई बरस बीत गये। अपना दुःख तो बयान ही कर चुका हूँ। घर बिल्कुल वे रुपये-पैसे का हो चुका था। कुछ जायदाद जरूर बच गयी थी। मैं खुद बता नहीं सकता कि इस दस-बारह बरस के अरसे में मैंने अपना और एक अनाथ परिवार का पालन-पोषण कैसे किया।..."

नहीं है । यही अनुभव अनेक पहलुओं से व्यक्त करना मेरे लिए कविता का मुख्य लक्ष्य रहा है। साधारण से साधारण विषयों को सुगम से सुगम भाषा में और स्वाभाविक से स्वाभाविक शैली में इतना उठा देना कि पंक्तियों की उँगलियाँ सितारों को छू लें, यही उच्चतम काव्य रचना है। मैं प्रकृति का परमाणुओं के अतिरिक्त आत्मा या परमात्मा अलग और स्वतंत्र अस्तित्व को नहीं मानता। संस्कृत काव्य में रसों का सिद्धान्त भौतिकता में निहित गुणों के अनुभव करने-कराने का ही दूसरा नाम है । देखना यही रहता है कि ये रस किन गहराइयों से निकलते हैं। वे केवल होठ और जीभ को ही छू पा या हमारी चेतना के तालुओं को भी छू हैं । अब मैं एक ऐसी बात कहने का स करूंगा जो कुछ लोगों को शायद

च कर दे । साहित्य बनता तो शब्दों से है, ले ये शब्द जब एक नीरवता में लय और ल हो जायें, जब शेर विस्मृत हो जाये अ उससे उत्पन्न होने वाली एक अकथनी स्थिति पैदा हो जाये, वही स्थिति साहि और काव्य की सबसे बड़ी देन है। महाभार का युद्ध तो हम कविता का सहारा लिये बिन भी लड़ सकते हैं। औद्योगिक क्रान्ति, फ्रां की क्रान्ति, रूस की क्रान्ति, चीन की क्रानि को साहित्य और कविता का बहुत कर सहारा लेना पड़ा। महान से महान कार्य जो संसार में हो रहे हैं, वह साहित्य के सहारे नहीं हो रहे हैं। साहित्य किसी राजनीतिक दल का सदस्य नहीं है। वह इतिहास का स्वयंसेवक भी नहीं है, साहित्य हमारी चेतना की वह तपस्या है, वह साधना है, जिससे हमारी विश्व या आत्म चेतना दिव्य बन जाये। चेतना प्राप्ति किसी दूसरे उद्देश्य या लक्ष्य का साधन मात्र नहीं है बल्कि वह स्वयं अपना लक्ष्य है । बर्नार्ड शा ने अपने एक नाटक में उस समय का चित्रण किया है, जब मनुष्य विकास और उन्नति की अन्तिम मंजिलों तक पहुँच चुकेगा । यहाँ पहुँच कर बर्नार्ड शा एक सवाल उठाता है- स्थिति को प्राप्त करके या उस सिद्धि को पा कर मनुष्य क्या किया करेगा? जबाब देता है कि वह जीवन कारोबारी जीवन नहीं होगा । राजनीति, अर्थशास्त्र और दौड़-धूप के कामों से वह जीवन मुक्त होगा । वह जीवन एक मात्र विचारों और अनुभवों में निमग्न रहेगा। साहित्य हमें उस कर्म और कार्य- मुक्त, बन्धनग्रसित जीवन से छुटकारा दिलाने में सहायक होता है । ज्ञान-ध्यान आडम्बर नहीं है, हम भले उन्हें ज्ञान ध्यान से रहित हो कर एक आडम्बर बना दें। अपना एक शेर मुझे याद आया-

'जाओ न तुम इस बेखबरी पर कि हमारे
हर ख्वाब से इक अह्द की बुनियाद पड़ी हैं'

यहाँ अह्द का मतलब 'युग' है। दुनिया और मानव जाति कर्म के बन्धन ग्रहण करके आगे बढ़ती है और आगे बढ़ती जायेगी और ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती जायेगी, कर्म हलका होता जायेगा और कम से कम हो कर रह जायेगा। विज्ञान और वैज्ञानिक आविष्कारों की उन्नति इसी ओर संकेत कर रही है। मशीनों ने इसीलिए जन्म लिया है कि मनुष्य को कम से कम शारीरिक बल लगाये बिना ही सब कुछ मिलता रहे और जो कुछ वह चाहता है, सब कुछ होता रहे। कर्म का महत्व एक बीच की मंजिल है।

मैंने अपनी रचनाओं में यही प्रयास किया है कि हम काव्यात्मक और कलात्मक चेतना से, मनन और विवेक से ऐसे अनुभव प्राप्त कर सकें जिसमें संसार से अलग किसी खुदा, ईश्वर, मजहब, पूजा-पाठ, सिज्दा दण्डवत या साम्प्रदायिकता का कोई स्थान न हो । हिन्दू-विचार साम्प्रदायिक विचार नहीं है। किसी विशेष जाति या सम्प्रदाय को दूसरी जातियों और सम्प्रदाय से अलग करके हिन्दू विचारों का निर्माण नहीं हुआ है। जब ये विचार ईश्वरवादिता से मुक्त हैं तो सम्प्रदाय वादिता में कैसे जकड़े रह सकते हैं। मेरी कविताओं की अपील सार्वजनिक है। आज योरप, अमरीका और दूसरे देशों में भी भारतीय विचारधारा का गहरा अध्ययन किया जा रहा रहा है।

ऐसा नहीं है कि मैंने सामाजिक या राज- नीतिक जागृति पैदा करने के लिए कविताएँ रची ही न हों। 'धरती की करवट', 'मार्क्स और लेनिन की सेवाएं', 'इकाबेबीन रोटियाँ', 'हिंडोला' मेरी वे कविताएँ हैं और मेरी बहुत सी रूबाइयाँ मेरी वे

रचनाएँ हैं जिनमें कर्म के महत्व को समझने के लिए समाज को ललकारा गया है, लेकिन यहाँ भी चिन्तन और मनन कलात्मक है। ये कविताएँ सामयिकता से ऊपर के स्तरों को छूती हैं। इनमें कर्म के लिए उपदेश नहीं है बल्कि कर्म अपनी सीमाओं में रहता हुआ भी दिव्य बन गया है। अन्त में यही कहूँगा कि मेरे नजदीक कविता वही है, जिसकी शब्दावली कोशों के उन शब्दों से न बनायी जाये जो समाज में प्रचलित नहीं हैं। जैसा कि अंगरेजी के महाकवि वर्डसवर्थ ने बताया है कि शब्दों और वाक्यों में भाव और रस तभी पैदा होता है, जब भावनाओं से प्रेरित होकर सैकड़ों बरस तक साहित्यकार जनसाधारण की शब्दावली में अपने आन्तरिक अनुभवों को व्यक्त करे। कविता की भाषा न कोशों में दफन रहती है, न दावात की रोशनाई में। करोड़ों की बोल-चाल को सुसंगठित करके कविता की भाषा बनती है । यही किया है सूर ने, तुलसी ने, कबीर और मीरा ने और यही किया है समझदार उर्दू कवियों ने। जिस तरह देहात का दर्जी फूहड़पन से कपड़े को काट कर भद्देपन से सिल कर कोट, कमीज, कुरता और दूसरे वस्त्र बनाता है, उसी तरह खड़ी बोली को फूहड़ या मुर्दार ढंग से प्रयोग करके कवि रचना, नागरता को चौपट कर देता है। खड़ी बोली के साथ बेढंगेपन का व्यवहार करके उसे अपरिचित शब्दों से बोझिल कर के, शब्द क्रम बिगाड़ कर कविता करना खड़ीबोली की कोई सेवा नहीं है। अलबत्ता हमें एक दूसरे खतरे से भी सावधान रहना है, वह खतरा यह है कि हम केवल ऊपरी चमक-दमक और दिखाने की भाषा को खड़ी कविता की भाषा न बनने दें। यह भाषा केवल शुद्ध, स्वाभाविक या टकसाली नहीं होनी चाहिए,

> "ऐसा नहीं है कि मैंने सामाजिक या राज- नीतिक जागृति पैदा करने के लिए कविताएँ रची ही न हों। 'धरती की करवट', 'मार्क्स और लेनिन की सेवाएं', 'इकाबेबीन रोटियाँ', 'हिंडोला' मेरी वे कविताएँ हैं और मेरी बहुत सी रुबाइयाँ मेरी वे रचनाएँ हैं जिनमें कर्म के महत्व को समझने के लिए समाज को ललकारा गया है, लेकिन यहाँ भी चिन्तन और मनन कलात्मक है।..."

इसे प्रभावात्मक भी होना चाहिये, जिसमें हमारी चेतना डूब सके जो हमारी चेतना को तल्लीन बना सके, जो कविता में संगीत और कर्णप्रिय झंकारें पैदा कर सके। शैली को न तो ठुकराने से काम चलता है, न उसके ऊपरी और बाहरी सजावटों या बनावटों से कागजी फूल तराशने से काम चलता है, साधारण जीवित और दुखती हुई रगों को छू देने से जो भाषा बनती है, वही कविता की भाषा है ।

मेरी कविताओं का यह संकलन रबा- रबी या हलचल में पड़कर इसके कुछ टुकड़े ले भागने के लिए प्रकाशित नहीं हो रहा है। ठहर-ठहर के डूब-डूब के पढ़ने के लिए और बार-बार पढ़ने के लिए इन कविताओं की रचना हुई है। मैं युनिवर्सिटी में 1930 से 1958 तक काम कर चुकने के बाद 1959 ई० में रिटायर हो गया।

अब मैं 75 वर्ष का हो रहा हूँ और शिथिलताएँ मुझ पर छाती जा रही हैं । यह मेरी जीवन की संध्या है। शायरी मैंने इरादे से कभी नहीं की। किसी गुप्त स्रोत से अकस्मात् उत्पन्न होने वाली प्रेरणाएँ, मुझसे काव्य रचना कराती रही हैं। जब कोई कविता स्वयं गुनगुनाती हुई मेरे अन्त:करण से निकल कर पंक्तियों का रूप धारण करके आरम्भ हो जाती थी, तो पूरी कविता इसी प्रारम्भ से बनती चली जाती थी। मेरा हाथ और कलम इसी प्रेरणा के वश में होता था। कविता करना तो दूर रहा, मैं साधारण मनोरंजन के लिए, अध्ययन के लिए या किसी हृदयग्राही कार्य के लिए हिसाब-किताब लगा के, हानि-लाभ जोड़ के, जबरदस्ती किसी इरादे को अपने ऊपर लाद कर किसी काम को काम या कर्त्तव्य समझ कर कदाचित ही कोई काम करता था। मालूम होता है कि मेरा पूरा अस्तित्व गुप्त शक्तियों के हाथ में रहा है। मेरा सब कुछ करना-धरना इन्हीं शक्तियों के द्वारा रहा है। मैंने अपना जीवन-सम्बंधी अध्ययन और विद्या सम्बंधी विचार, कविता सम्बंधी धारणाएँ और अन्य केन्द्रित विचार इस कथन में बताने का यत्न किया है। बयान लम्बा होता जाता है, अपने आप को कहाँ तक समझूँ या समझाऊँ। कुछ आप भी मुझे, इन कविताओं द्वारा, इस कथन द्वारा सही या गलत समझने का प्रयत्न करें और देखें कि मेरी कविताओं में हर एक के दिल का चोर कहाँ तक निकला है। क्या इन कविताओं को पढ़कर गुनगुना कर आप अपने आप को फिर से पा सके हैं ? अगर आप इनके जरिये कुछ भी अपने आप को पा सके हैं, जीवन को कहीं से भी छू सके हैं, मेरे अनुभवों को अपना जीवन-साथी बना सके हैं, तो मैं इसे अपनी कविताओं की सफलता समझूँगा। कहा गया है कि अगर हम शेक्सपियर की कोई रचना पढ़ते हुए उससे सही ढंग से और सही मात्रा तक प्रभावित हो सकें तो उतनी देर के लिए हम शेक्सपियर के बराबर हो जाते हैं। 'फ़िराक़' ने बस इतना ही चाहा है कि इनसानी जिन्दगी को अपनी जिन्दगी बना ले। मेरा अलग-अलग कोई अस्तित्व नहीं है। मैं आप ही लोगों में से एक, आप ही लोगों जैसा व्यक्ति हूँ। कार्लाईल ने ठीक ही कहा है कि पूरा समाज गुप्त और अर्द्ध-चैतन्य ढंग से जिन बातों को धुँधले ढंग से अनुभव करता है, कवि उन्हीं अनुभवों को धुँधलके से उभार कर खुली रोशनी में प्रस्तुत करता है। इतना कह के आप लोगों से रुखसत चाहूँगा। अब मेरे जीवन और मेरे संगीत दोनों को नींद आ रही है-

अब तुमसे रुख़सत होता हूँ आओ सँभालो साजे-ग़ज़ल
नये तराने छेड़ो, मेरे नग्मों को नींद आती है।
(साभार, उत्तर प्रदेश, फ़िराक़ अंक, मार्च 1983, सूचना एवं जन संपर्क विभाग, उत्तर प्रदेश का प्रकाशन, पृष्ठ-3-7)

साहित्यिक विरासत से

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी हिंदी भाषा के लिए तथा भारतवासियों को अपनी निज भाषा में शिक्षित करने के सपने ही नहीं देखते रहे; वे बहुत सार्थक प्रयास भी इस दिशा में निरंतर करते रहे। सन् 1877 ई. में 'हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान' शीर्षक से उन्होंने 98 दोहों के रूप में एक सभा में जनता के समक्ष भाषण दिया था; उनका यह भाषण आज भी उतना ही प्रासंगिक है। यह भाषण दुर्लभ और ऐतिहासिक है तथा हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने यह भाषण हिंदीवर्द्धिनी सभा में पढ़ा था।... यह हिंदी प्रदीप खं. 1 सं. 1-2, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 'हिंदी भाषा' नाम से प्रकाशित है।

प्रस्तुति- डॉ. जगदीश व्योम

हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान

-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

अहो-अहो मम प्रान प्रिय, आर्य भ्रातृ-गन आज।
धन्य दिवस जो यह जुड़ो, हिन्दी हेतु समाज।१

तामें आदर अति दिये, मोहिं तुम निज जन जान।
जो बुलवायो मोहिं इत, दर्शन हित सन्मान।२

जदपि न मैं जानत कछू, सब बिधि सों अति दीन।
तदपि भ्रात निज जानि कै, सबन कृपा अति कीन।३

भारत में यह देस धनि, जहाँ मिलत सब भ्रात।
निज भाषा हित कट कसे, हम कहँ आज लखात।४

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।५

पढ़े संस्कृत जतन करि, पंडित भे विख्यात।
पै निज भाषा ज्ञान बिन, कहि न सकत एक बात।६

पढ़े फारसी बहुत बिध, तौहू भये खराब।
पानी खटिया तर रहो, पूत मरे बकि आब।७

अंग्रेजी पढ़ि के जदपि, सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन, रहत हीन के हीन।८

यह सब भाषा काम की, जब लौं बाहर बास।
घर भीतर नहिं कर सकत, इन सों बुद्धि प्रकास।९

नारि पुत्र नहिं समझहीं, कछु इन भाषन माहिं।
तासों इन भाषन सों, काम चलत कछु नाहिं।१०

उन्नति पूरी है तबहिं, जब घर उन्नति होय।
निज सरीर उन्नति किए, रहत मूढ़ सब लोय।११

पिता बिबिध भाषा पढ़े, पुत्र न जानत एक।
तासों दोउन मध्य में, रहत प्रेम अविवेक।१२

अँग्रेजी निज नारि को, कोउ न सकत पढ़ाइ।
नारि पढ़े बिन एक हू, काज न चलत लखाइ।१३

गुरु सिखवत बहु भाँति लौं, जदपि बालकन ज्ञान।
पै माता-शिक्षा सरिस, होत तौन नहिं ज्ञान।१४

जब अति कोमल जिय रहत, तब बालक तुतरात।
भूलत नहिं सो बात जो, तबै सिखाई जात।१५

भूलि जात बहु बात जो, जोबन सीखत लोय।
पै भूलत नहि बालकन, सीख्यो सुनो जो होय।१६

जिमि लै काँची मृत्तिका, सब कछु सकत बनाय।
पै न पकाए पर चलत, तामें कछू उपाय।१७

काँचे पर ता सो बनत, जो कछु सो रह जात।
चिन्ह सदा तिमि बाल सिसु, शिक्षा नाहिं भुलात।१८

सो सिसु-शिक्षा मातु-बस, जो करि पुत्रहि प्यार।
खान-पान खेलन समय, सकत सिखाय बिचार।१९

लाल पुत्र करि चूमि मुख, विविध प्रकार खेलाइ।
माता सब कछु पुत्र को, सहजहिं सकत दिखाइ।२०

सो माता हिंदी बिना, कछु नहिं जानत और।
तासों निज भाषा अहै, सबही की सिरमौर।२१

पढ़ो लिखो कोउ लाख बिध, भाषा बहुत प्रकार।
पै जबही कछु सोचिहो, निज भाषा अनुसार।२२

सुत सों तिय सों मीत सों, भृत्यन सों दिन रात।
जो भाषा महिं कीजिये, निज मन की बहु बात।२३

ता की उन्नति के किये, सब बिधि मिटत कलेस।
जामैं सहजहि देसकौ, इन सब को उपदेश।२४

जद्यपि बाहर के जनन, गुन सों देत रिझाय।
पै निज घर के लोग कहँ, सकत नाहिं समझाय।२५

बाहर तो अति चतुर बनि, कीनो जगत प्रबंध।
पै घर को व्यवहार सब, रहत अंध को अंध।३६

कै पहिने पतलून कै, भये मौलबी खास।
पै तिय सके रिझाय नहिं, जो गृहस्थ सुख बास।२७

इनकी सो अति चतुरता, तिनको नाहिं सुहात।
ताही सों प्राचीन कवि, कही भली यह बात।२८

खसम जो पूजै देहरा, भूत-पूजनी जोय।
एकै घर में दो मता, कुसल कहाँ से होय।२९

तासों जब सब होहिं घर, बिद्या-बुद्धि निधान।
होइ सकत उन्नति तबै, और उपाय न आन।३०

निज भाषा उन्नति बिना, कबहुँ न ह्वै है सोय।
लाख अनेक उपाय यों, भले करो किन कोय।३१

इक भाषा, इक जीव इक मति सब घर के लोग।
तबै बनत है सबन सों, मिटत मूढ़ता सोग।३२

और एक अति लाभ यह, यामै प्रगट लखात।
निज भाषा में कीजिये, जो विद्या की बात।३३

तेहि सुनि पावै लाभ सब, बात सुनै जो कोय।
यह गुन भाषा और महँ, कबहुँ नाहीं कोय।३४

लखहु न अँगरेजन करी, उन्नति भाषा माहिं।
सब विद्या के ग्रंथ अँगरेजन माँह लखाहिं। ३५

सब्द बहुत परदेस के, उच्चार हु न ठीक।
लिखत कछू पढ़ि जात कछु, सब बिधि परम अलीक।३६

पै निज भाषा जानि तेहि, तजत नहीं अंगरेज।
दिन-दिन याही को करत, उन्नति पै अति तेज।३७

बिबिध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लै करहु, भाषा माहिं प्रचार।३८

जहाँ जौन को गुन लह्यो, लियो जहाँ सो तौन।
ताही सों अंगरेज अब, सब बिद्या के भौन।३९

पढ़ि बिदेस भाषा लहत, सकल बुद्धि को स्वाद।
कृतकृत्य न होत ये, बिन कछु करि अनुवाद।40

तुलसी कृत रामायनहु, पढ़त जबै चित लाय।
तब ताको आसय लिखत, भाषा माहिं बनाय।४१

तासों सबहीं भाँति है, इनकी उन्नति आज।
एकहि भाषा महँ अहै, जिनकी सकल समाज।४२

धर्म जुद्ध विद्या कला, गीत काव्य अरु ज्ञान।
सबके समझन जोग है, भाषा माँहि समान।४३

भारत में सब भिन्न अति, ताही सों उत्पात।
बिबिध देस मतहू बिबिध, भाषा बिबिध लखात।४४

सौंप्यौ ब्राह्मन को धरम, तेइ जानत वेद।
तासों निज मत को लह्या, कोऊ कबहुँ न भेद।४५

तिन जो भाष्यो सोइ कियो, अनुचित जदपि लखात।
सपनहुँ नहिं जानी कछू, अपने मत की बात।४६

पढ़े संस्कृत बहुत बिध, अंग्रेजी हू आप।
भाषा चतुर नहीं भये, हिय को मिट्यो न ताप।४७

तिमि जग शिष्टाचार सब, मौलवियन आधीन।
तन सों सीखे बिनु रहत, भये दीन के दीन।४८

बैठनि बोलनि उठनि पुनि, हँसनि मिलनि बतरान।
बिन पारसी न आवही, यह जिय निश्चय जान।४९

तिमि जग की विद्या सकल, अंगरेजी आधीन।
सबै जानि ताके बिना, रहै दीन के दीन।५०

करत बहुत बिधि चतुरई, तऊ न कछू लखात।
नहिं कछु जानत तार में, खबर कौन बिधि जाता।५१

रेल चलत केहि भाँति सों, कल है काको नाँव।
तोप चलावत किमि सबै, जारि सकल जो गाँव।५२

वस्त्र बनत केहि भाँति सों, कागज केहि बिधि होत।
काहि कबाइद कहत हैं, बाँधत किमि जल-सोत।५३

उतरत फोटोग्राफ किमि, छिन मँह छाया रूप।
होय मनुष्यहि क्यों भये, हम गुलाम ये भूप।५४

यह सब अंगरेजी पढ़े, बिनु नहिं जान्यो जात।
तासों याको भेद नहिं, साधारनहि लखात।५५

बिना पढ़े अब या समै, चलै न कोउ बिधि काज।
दिन-दिन छीजत जात है, या सों आर्य समाज।५६

कल के कल बल छलन सों, छले इते के लोग।
नित-नित घन सों घटत हैं, बाढ़त है दुख सोग।५७

मारकीन मलमल बिना, चलत कछु नहिं काम।
परदेसी जुलहान कै, मानहु भये गुलाम।५८

वस्त्र काँच कागज कलम, चित्र खिलौने आदि।
आवत सब परदेस सों, नितहि जहाजन लादि।५९

इत की रुई सींग अरु, चरमहि तित लै जाय।
ताहि स्वच्छ करि वस्तु बहु, भेजत इतहि बनाय।६०

तिनही को हम पाइकै, साजत निज आमोद।
तिन बिन छिन तन सकल सुख, स्वाद बिनोद प्रमोद।६१

कछु तो बेतन में गयो, कछुक राज-कर माँहि।
बाकी सब व्यौहार में, गयो रह्यौ कछु नाहिं।६२

निरधन दिन-दिन होत है, भारत भुव सब भाँति।
ताहि बचाइ न कोउ सकत, निज भुज बुद्धि-बल कांति। ६३

यह सब कला अधीन है, तामें इतै न ग्रन्थ।
तासों सूझत नाहिं कछु, द्रब्य बचावन पंथ।६४

अंगरेजी पहिले पढ़ै, पुनि बिलायतहि जाय।
या विद्या को भेद सब, तो कछु ताहि लखाय।६५

सो तो केवल पढ़न में, गई जवानी बीति।
तब आगे का करि सकत, होइ बिरध गहि नीति।६६

तैसहि भोगत दण्ड बहु, बिनु जाने कानून।
सहत पुलिस की ताड़ना, देत एक करि दून। ६७

पे सब विद्या की कहूँ, होइ जु पै अनुवाद।
निज भाषा महँ तो सबै, याको लहै सवाद।६८

जानि सकैं सब कछु सबहि, बिबिध कला के भेद।
बनै बस्तु कल की इतै, मिटै दीनता भेद।६९

राजनीति समझैं सकल, पावहिं तत्व बिचार।
पहिचानें निज धरम को, जानैं शिष्टाचार।७०

दूजे के नहिं बस रहैं, सीखैं बिबिध विबेक।
होइ मुक्त दोउ जगत के, भोगैं भोग अनेक।७१

तासों सब मिलि छाँड़ि कै, दूजे और उपाय।
उन्नति भाषा की करहु, अहो भ्रात गन आय।७२

बच्च्यौ तनिकहू समय नहिं, तासों करहु न देर।
औसर चूके ब्यर्थ की, सोच करहुगे फेर।७३

प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि जत्न।
राज-काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न।७४

भाषा सोधहु आपनी, होइ सबै एकत्र।
पढ़हु, पढ़ाबहु, लिखहु मिलि, छपवावहु कछु पत्र।७५

बैर बिरोधहि छोड़ि कै, एक जीव सब होय।
करहु जतन उद्धार को, मिलि भाई सब कोय।७६

आल्हा बिरहहु को भयो, अंगरेजी अनुवाद।
यह लखि लाज न आवई, तुमहिं न होत बिखाद।७७

अंगरेजी अरु फारसी, अरबी संस्कृति ढेर।
खुले खज़ाने तिनहिं क्यों, लूटत लावहु देर।७८

सबको सार निकाल कै, पुस्तक रचहु बनाइ।
छोटी-बड़ी अनेक बिध, बिबिध विषय की लाइ।७९

मेटहु तम अज्ञान को, सुखी होहु सब कोय।
बाल वृद्ध नर नारि सब, विद्या संजुत होय।८०

फूट बैर को दूरि करि, बाँधि कमर मजबूत।
भारत माता के बनो, भ्राता पूत सपूत।८१

देव पितर सबही दुखी, कष्टित भारत माय।
दीन दसा निज सुतन की, तिनसों लखी न जाय ८२

कब लौं दुख सहिहौ सबै, रहिहौ बने गुलाम।
पाइ मूढ़ कालो अरध-सिक्षित काफिर नाम।८३

बिना एक जिय के भये, चलिहै अब नहिं काम।
तासों कोरो ज्ञान तजि, उठहु छोड़ि बिसराम।८४

लखहु काल का जग करत, सोवहु अब तुम नाहिं।
अब कैसो आयो समय, होत कहा जग माहिं।८५

बढ़न चहत आगे सबै, जग की जेती जाति।
बल बुधि धन विज्ञान में, तुम कहँ अबहूँ राति।८६

लखहु एक कैसे सबै, मुसलमान क्रिस्तान।
हाय फूट इक हमहिं में, कारन परत न जान।८७

बैर फुट ही सों भयो, सब भारत को नास।
तबहु न छाँड़त याहि सब, बँधे मोह के फाँस।८८

छोड़हु स्वारथ बात सब, उठहु एक चित होय।
मिलहु कमर कसि भ्रातगन, पावहु सुख-दुख खोय।८९

बीती अब दुख की निसा, देखहु भयो प्रभात।
उठहु हाथ मुँह धोइ कै, बाँधहु परिकर भ्रात।९0

या दुख सों मरनो भलो, धिग जीवन बिन मान।
तासों सब मिलि अब करहु, बेगहि ज्ञान बिधान।९१

कोरी बातन काम कछु, चलिहै नाहिंन मीत।
तासों उठि मिलि कै करहु, बेग परस्पर प्रीत।९२

परदेसी की बुद्धि अरु, वस्तुन की करि आस।
पर बस ह्वै कब लौं कहो, रहिहौ तुम ह्वै दास।९३

काम खिताब किताब सौं, अब नहिं सरिहै मीत।
तासों उठहु सिताब अब, छाँड़ि सकल भय भीत।९४

निज भाषा, निज धरम, निज मान करम ब्यौहार।
सबै बढ़ावहु बेगि मिलि, कहत पुकार पुकार।९५

लखहु उदित पूरब भयो, भारत-भानु प्रकास।
उठहु खिलावहु हिय-कमल, करहु तिमिर दुख नास।९६

करहु बिलम्ब न भ्रात अब, उठहु मिटावहु सूल।
निज भाषा उन्नति करहु, प्रथम जो सब को मूल।९७

लहहु आर्य्य भ्राता सबै, विद्या बल बुधि ज्ञान।
मेटि परस्पर द्रोह मिलि, होहु सबै गुन-खान।९८

-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने यह भाषण जून मास (जेष्ठ सं. १९३४) की हिंदीवर्द्धनी सभा में पढ़ा था। -हिंदी प्रदीप खं. 1 सं. 1-2, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा "हिंदी भाषा" नाम से प्रकाशित)

वेद प्रकाश भारद्वाज

हिन्दी साहित्य में पीएचडी डिग्रीधारी तथा पत्रकारिता में सक्रिय वेद प्रकाश भारद्वाज स्वतंत्र लेखक व कलाकार के रूप में कार्यरत हैं। कला, सिनेमा, साहित्य में लेखन। कई साक्षात्कार, लेख, समीक्षाएं प्रकाशित। दो एकल प्रदर्शनी।

ईमेल - bhardwajvedprakash@gmail.com

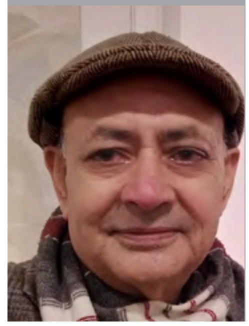

हिम्मत शाह का शिल्प संसार

-वेद प्रकाश भारद्वाज

"बड़ौदा से शिक्षा पूरी करने तक हिम्मत शाह की पहचान एक प्रतिभाशाली युवा कलाकार के रूप में हो गयी थी। उन्हीं दिनों वह जगदीश स्वामीनाथन के संपर्क में आये। स्वामीनाथन ने 1962 में 'ग्रुप 1890' की स्थापना की तो उसमें हिम्मत शाह भी शामिल थे। 1963 में इस ग्रुप की पहली प्रदर्शनी दिल्ली में हुई जिसका उदघाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने किया था। ..."

टेराकोटा शिल्प की सुदीर्घ परम्परा को आधुनिक कला में एक अलग आयाम देने का काम जिन कलाकारों ने किया है, उनमें हिम्मत शाह अग्रणी हैं। वैसे तो हिम्मत शाह ने कई माध्यमों में काम किया है। उनके धातु शिल्प भी मशहूर हैं, पर उन्हें सबसे ज्यादा ख्याति टेराकोटा शिल्प रचना में मिली। उनके टेराकोटा के हेड, जो मूर्त के साथ ही अमूर्त भी हैं; अलग पहचान रखते हैं। अपनी करीब सात दशक की रचना-यात्रा में उन्होंने अनेक प्रयोग किए, जिनमें घनवादी शैली से लेकर विरूपण और अमूर्तन शामिल हैं। हेड के साथ ही टेराकोटा में उन्होंने ऐसे पात्र भी रचे हैं, जो किसी ऐतिहासिक शहर की खोज में प्राप्त सभ्यता के अवशेष प्रतीत होते हैं। उनके हेड श्रृंखला के शिल्प अपनी संरचना में किसी रहस्य की तरह लगते हैं। उनके शिल्प वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य से आकर्षित करते हैं, पर वे सादृश्य से अधिक अदृश्य या अप्रत्यक्ष अर्थ की खोज का संकेत करते हैं। उनके टेराकोटा के हेड शीर्षक के शिल्प सतह पर आई तड़कन के साथ ही उन पर उकेरे गए आकल्पन से नई अर्थ छवियों की खोज की संभावना को जन्म देते हैं।

हिम्मत शाह का जन्म 1933 में ऐतिहासक शहर लोथल, गुजरात में हुआ था, जो सिंधु घाटी

हिम्मत शाह और उनके शिल्प। स्रोतः पब्लिक डोमिन

सभ्यता का एक प्रमुख बंदरगाह शहर था। हिम्मत शाह की कला साधना की शुरुआत भावनगर में कलाकार शिक्षक जगुभाई शाह की देखरेख में शुरु हुई। स्कूली शिक्षा के बाद जेजे स्कूल ऑफ आर्ट, बम्बई से उन्होंने कला शिक्षा पूर्ण की। उसके बाद 1956 से 1960 तक बड़ौदा विश्वविद्यालय के कला विभाग में उच्च शिक्षा प्राप्त की। वहाँ एनएस बेंद्रे ने उनके अंदर के वास्तविक कलाकार को पहचाना और उन्हें कला में नये प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया। के. जी. सुब्रमण्यन की कला में लोकतत्वों की उपस्थिति और उनकी अलग कला भाषा की खोज ने भी हिम्मत शाह को प्रभावित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि वह रेखांकनों के साथ ही टेराकोटा शिल्पों में नयी संभावनाओं की तलाश करने लगे।

बड़ौदा से शिक्षा पूरी करने तक हिम्मत शाह की पहचान एक प्रतिभाशाली युवा कलाकार के रूप में हो गयी थी। उन्हीं दिनों वह जगदीश स्वामीनाथन के संपर्क में आये। स्वामीनाथन ने 1962 में 'ग्रुप 1890' की स्थापना की तो उसमें हिम्मत शाह भी शामिल थे। 1963 में इस ग्रुप की पहली प्रदर्शनी दिल्ली में हुई, जिसका उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरु ने किया था। 1960 का दशक दिल्ली में कला व साहित्य की दृष्टि से बहुत ही ऊर्जावान था। मेक्सिकन कवि और राजनयिक ऑक्टोवियो पाज़ उन दिनों भारत में थे और लगाकार साहित्यकारों के साथ ही अन्य संस्कृति-कर्मियों के साथ संवाद करते रहते थे। हिम्मत शाह की उनसे मुलाकात हुई तो वह हिम्मत की कला से प्रभावित हुए। पॉज़ की अनुशंसा पर हिम्मत शाह को फ्रेंच सरकार की छात्रवृत्ति मिल गयी। वह 1967 में

एसडब्ल्यू हेयेटर और कृष्णा रेड्डी के मार्गदर्शन में एटेलियर-17 में ग्राफिक का अध्ययन करने गये। वहाँ उन्होंने दो साल तक ग्राफिक कला के इन दोनों विद्वानों से इस कला की बारीकियाँ सीखीं। उन्हीं दिनों पेरिस में उनका संपर्क कई दूसरे कलाकारों से हुआ। पश्चिमी कला के संपर्क से उन्हें एक नयी दृष्टि मिली और उन्होंने टेराकोटा व सेरामिक शिल्पों में छापा कला की विशेषताओं का प्रयोग करना शुरू कर दिया।

यूरोप से लौटने के बाद हिम्मत शाह ने टेराकोटा के साथ ही पत्थर में काम शुरू किया। उनकी रुचि मानवीय भावनाओं को चेहरे के माध्यम से व्यक्त करने में अधिक थी, इसलिए उन्होंने विभिन्न माध्यमों में हेड बनाने शुरू किये। इनमें भी वह मनुष्य के चेहरे को यथार्थवादी शैली की जगह अमूर्तन में बनाने लगे। ऐसा लगता था जैसे किसी प्राचीन बस्ती के उत्खनन में वह निकले हैं। चेहरे को उन्होंने तलाशने की जगह उन्हें खुरच दिया, कहीं कुछ हिस्सा उखड़ गया या उसमें दरार आ गयी, तो उन्होंने उसे वैसा ही रहने दिया। बाद में तो वह इस प्रभाव को सायास बनाने लगे। इसके साथ ही उनके हेड में वह रेखांकन जैसे

"हिम्मत शाह एक जगह कहते हैं कि "मैं कुछ नहीं बनाता हूँ। मेरे हाथ हैं जो बनाते हैं। जब मेरे हाथों के नीचे मिट्टी होती है तो मैं नहीं होता हूँ।" यह जो मैं है, यह किसी भी कलाकार को बांधता है। ..."

हिम्मत शाह के शिल्प। स्रोतः पब्लिक डोमिन

प्रभावों की रचना भी करने लगे। शुरुआत में वह ज्यादातर काम मिट्टी में करते थे। इससे उन्हें एक पहचान मिली। अनेक शिल्पों में उन्होंने चेहरों को भग्न अवस्था में रचा, शिल्पों के साथ उन्होंने स्वर्ण आभा का प्रयोग किया। एक तरफ वह हेड सीरिज में काम करते रहे, तो दूसरी तरफ घनवादी शैली में कई अमूर्त शिल्पों की रचना भी की। इसमें उन्होंने काले रंग के साथ स्वर्णिम आभा का भी प्रयोग किया। एकल हेड के साथ उन्होंने कई शिल्पों के कंपोजिशन पर भी काम किया।

1967 से 1971 तक, हिम्मत शाह ने सेंट जेवियर्स स्कूल अहमदाबाद में ईंट, सीमेंट और कंक्रीट से स्मारकीय भित्ति-चित्र बनाये। बाद में उन्होंने प्लास्टर में भी म्यूरल बनाये पर जल्दी ही इस व्यावसायिक कार्य को छोड़कर वह सृजनात्मक कला की तरफ मुड़ गये। उन्होंने सिल्वर पेंटिंग्स नामक श्रृंखला में प्लास्टर में रिलीफ वर्क करना शुरु कर दिया। पर पेटिंग उनकी विधा नहीं थी। ड्राइंग वह लगातार करते रहे पर पेंटिंग के प्रति उन्होंने कोई मोह नहीं किया और शिल्पों की रहस्यमय दुनिया में चले गये। दिल्ली में ललित कला अकादेमी के क्षेत्रीय

"यूरोप से लौटने के बाद हिम्मत शाह ने टेराकोटा के साथ ही पत्थर में काम शुरू किया। उनकी रुचि मानवीय भावनाओं को चेहरे के माध्यम से व्यक्त करने में अधिक थी, इसलिए उन्होंने विभिन्न माध्यमों में हेड बनाने शुरू किये। इनमें भी वह मनुष्य के चेहरे को यथार्थवादी शैली की जगह अमूर्तन में बनाने लगे।..."

केंद्र, गढ़ी कला कुटीर में उन्होंने कई साल तक काम किया। यह वह समय था जब हिम्मत शाह अपनी कला के शिखर पर पहुँच चुके थे। बाद में वह 2000 में दिल्ली छोड़कर जयपुर चले गये। हिम्मत शाह ने 2004 में कांस्य में कुछ शिल्पों की रचना की जिनकी कास्टिंग का काम लंदन में कराया गया था। इस समय तक कला बाजार में हिम्मत शाह को जगह मिलने लगी थी। जयपुर जाने के बाद हिम्मत शाह के लिए नये प्रयोग करना और आसान हो गया। उनका स्टूडियो एक तरह से प्रयोगशाला बन गया। टेराकोटा, सेरामिक, ब्रांज आदि में काम करने के साथ ही लगातार वह ड्राइंग करते हुए अपने शिल्पों में नये आयाम खोजते रहे।

शिल्प में भी हिम्मत शाह ने अलग तरह की हिम्मत दिखाई। उनके समकालीन जब शिल्प रचना में मानव आकारों, धातु और बड़े आकारों को महत्व दे रहे थे, तब वह अमूर्त चेहरों के छोटे आकार के शिल्पों पर फोकस करने लगे। लंबे समय तक वह सिर्फ टेराकोटा में ही काम करते रहे। उनके टेराकोटा शिल्पों को यदि एक साथ रखकर देखा जाए तो लगता है जैसे किसी प्राचीन शहर के उत्खनन से प्राप्त भग्न प्रतिमाएँ हैं। टेराकोटा और सेरामिक में उन्होंने मिट्टी के मूल रंग को अधिक पसंद किया। कई बार उन्होंने उसे काला रंग जरूर दिया। उन्होंने शिल्प की बाहरी सतह को कागज की तरह इस्तेमाल किया। उस पर विभिन्न पैटर्न उकेरते हुए उन्होंने उसे एक नया आयाम दिया। जब उन्होंने धातु में काम शुरू किया तो उसकी बाहरी सतह पर अज्ञात लिपि जैसी संरचनाओं का प्रयोग किया। बाद में उन्होंने मिट्टी के शिल्पों में जब अमूर्तन का अधिक प्रयोग किया, तब उसमें कहीं स्वर्णिम गेंद रखने लगे या शिल्प के किसी अंश को स्वर्णिम रंग देने लगे। धातु के शिल्पों में भी उन्होंने यह प्रयोग किया। धातु शिल्पों में उन्होंने कई नये प्रयोग किये। विषय उनका हेड ही रहा पर उसमें घनवादी शैली का प्रयोग अधिक देखने को मिला है। उनके चेहरो में जड़ता नहीं है। एक स्थिर शिल्प में भावों की गतिशीलता कैसे संचारित की जा सकती है, यह हिम्मत शाह जानते हैं। उनके शिल्पों को देखते हुए दर्शक एक ऑब्जेक्ट से अधिक एक विचार, एक भाव से साक्षात्कार कर रहा होता है। इस प्रक्रिया में वह स्थिर होकर भी भाव स्तर पर गतिशील हो जाता है। उनके टेराकोटा के अनेक शिल्पों में परतों का उखड़ा होना या कुछ हिस्से का क्षतिग्रस्त होना जैसे जीवन के बनने और मिटने की एक प्रक्रिया को हमारे सामने रख रहा

होता है। कम में अधिक कहने की उनकी क्षमता उन्हें अपने समय का बड़ा कलाकार बनाती है। उन्होंने एक साक्षात्कार में कहा था कि मनुष्य एक पहेली है, इसलिए वह जो कुछ बनाता है उसे भी पहेली होना चाहिए। इसीलिए उनके शिल्पों को कई समीक्षकों ने एक पहेली कहा है। हिम्मत शाह एक जगह कहते हैं कि मैं कुछ नहीं बनाता हूँ, मेरे हाथ हैं जो बनाते हैं। जब मेरे हाथों के नीचे मिट्टी होती है, तो 'मैं' नहीं होता हूँ। यह जो 'मैं' है, यह किसी भी कलाकार को बाँधता है। 'मैं' का अर्थ है, कलाकार की पूर्व स्थापित धारणाएँ, उसके अनुभवों की एक रेखिक गति, एक योजना के तहत काम करना, और यह सब हिम्मत शाह के लिए करना कभी शायद संभव नहीं रहा। यही कारण है कि उनके शिल्पों में उनकी पहचान होने के बाद भी भिन्नता का आभास होता है। एकरूपता को तोड़ने के लिए उन्होंने कला-सामग्री के स्तर पर नये प्रयोग करने का साहस दिखाया। यहाँ तक कि एक बार उन्होंने जले हुए कागजों के कोलॉज भी रचे। रेखांकन तो वह हमेशा करते ही रहे, पर जले कागजों के कोलॉज के बारे में किसी ने कल्पना नहीं की थी। कला कार्य करते हुए कला से कलाकार के मुक्त हो जाने से ही यह संभव है। इसीलिए हिम्मत कहते हैं कि मैं कुछ नहीं बनाता।

हिम्मत शाह की प्रदर्शनियाँ दुनिया की अनेक गैलरियों में हो चुकी हैं। उनका काम कला नीलामियों के साथ ही सभी प्रतिष्ठित समूह प्रदर्शनियों में शामिल रहता है। अनेक अंतरराष्ट्रीय कला नीलमियों में उनके शिल्प और ड्राइंग ऊँची कीमत पर बिकते रहे हैं। हाल ही में उनके 90 वर्ष पूर्ण करने पर कई शहरों में उनकी विहंगावलोकन प्रदर्शनियों का आयोजन किया गया था।

-वेद प्रकाश भारद्वाज

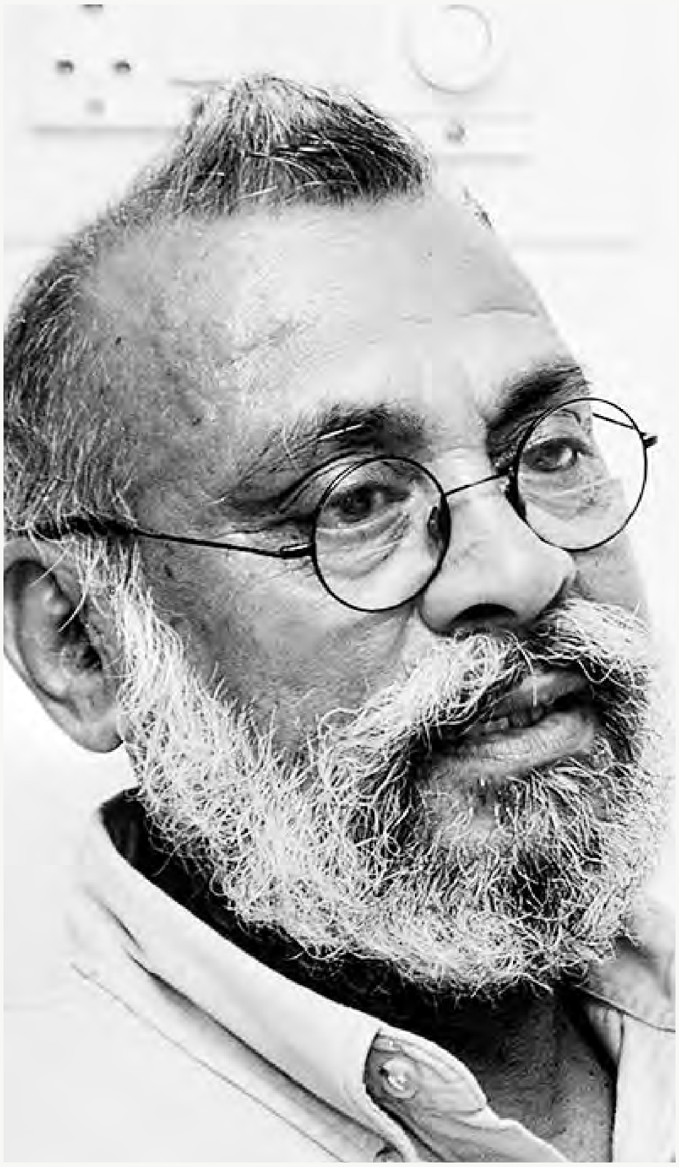

हिम्मत शाह

हिम्मत शाह का जन्म 1933 में लोथल, गुजरात में हुआ था और वह सिंधु घाटी सभ्यता के एक प्रमुख बंदरगाह शहर के अवशेषों से घिरे हुए बड़े हुए थे। वह एक युवा लड़के के रूप में भावनगर चले गए और गुजरात में राष्ट्रवादी पुनर्जागरण के बौद्धिक और सांस्कृतिक केंद्र, दक्षिणामूर्ति से संबद्ध एक स्कूल, घरशाला में अध्ययन किया। एक युवा के रूप में, उन्होंने भारत की स्वतंत्रता देखी होगी। घरशाला में, हिम्मत ने बॉम्बे में जे जे स्कूल ऑफ आर्ट में शामिल होने से पहले ही कलाकार-शिक्षक जगुभाई शाह के माध्यम से अभ्यास की शुरुआत की, और फिर 1956 से 1960 तक सरकारी सांस्कृतिक छात्रवृत्ति पर बड़ौदा चले गए।

आजकल वह जयपुर में रहते हैं और काम करते हैं।

वेबसाइट - http://himmat-shah.com

अनुमेहा जैन

वह समकालीन अमूर्त कलाकार के रूप में पिछले 15 वर्षों से अधिक समय से काम कर रहीं हैं. 2018 में उन्हें भारत सरकार की जूनियर फेलोशिप प्राप्त हुयी, ललित कला गढ़ी, नई दिल्ली में वर्किंग गढ़ी आर्टिस्ट आर्ट शो में भाग लिया था। वह बचपन से ही भगवान के रहस्यों और पौराणिक कथाओं में दिलचस्पी रखतीं थीं, उत्तर प्रदेश के अर्ध-शहरी शहर में पली-बढ़ी एक महिला होने के नाते, वह भारतीय घरों में अधिकांश लड़कियों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही हैं। वह दिल्ली में रहती हैं और काम करती हैं.

ईमेल : anumehaajaiin@gmail.com

चित्र और चित्रकार

चित्रकार : अनुमेहा जैन

Title: Mystery of Follicles-16

Medium: Acrylic on canvas Size: 36”x36”

Year: 2021